शुभदा

[१८ वीं सदी के राजनैतिक और सामाजिक तथ्यों पर आधारित उपन्यास]

•

लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री

शुभदा

•

आचार्य चतुरसेन शास्त्री



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी-१

[illegible] : ACHARYA CHATURSEN SHASTRI

NOVEL

•

प्रकाशक :
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो बक्स नं ७
पिशाचमोचन वाराणसी-१

संस्करण प्रथम
अक्टूबर १९६२

आवरण-शिल्पी
मनोरंजन कांजिलाल

मूल्य :
४ रु० ५० न पै

विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि० मानमन्दिर, वाराणसी-१ में मुद्रित

•

शुभदा

•

१

वर्षा ऋतु थी। भादों का महीना। गंगा के पश्चिमी तट पर तनिक हट कर गौरीपुर गाँव था। गंगा तट से गाँव तक वृक्षों की एक लम्बी कतार दूर तक चली गई थी। गंगा पूरे वेग में बह रही थी। घाट पुराना था। टूटा-फूटा था—पर अभी दो-चार पक्की सीढ़ियाँ उसमें बनी थीं। उनमें कुछ पानी में डूब गई थीं। घाट पर इस समय बड़ी भीड़ भाड़ थी। बहुत से स्त्री-पुरुष घाट पर जमा थे। घाट से गाँव तक आदमियों का ताँता लगा था।

गौरीपुर के जमींदार राधामोहन मजूमदार के पुत्र की अचानक ही हैजे से मृत्यु हो गई थी और अब उसकी नवविवाहिता बालपत्नी सती हो रही थी। सारा वातावरण शोक और हाहाकार से भरा हुआ था। घाट पर चिता बनी हुई थी और उस पर मृत तरुण का शव रखा हुआ था। बहुत से ब्राह्मण आवश्यक उपचार कर रहे थे। चिता के निकट घाट की पत्थर की सीढ़ी पर पैर लटकाए वह बिलकुल अबोध बालिका मगमग बबुप-सी बैठी थी। उसका नख-शिख शृंगार किया गया था। नवीन रंगीन चुनरी पहनाई गई थी। माँग में सिंदूर दिया गया था। हाथों में सुहाग का चूड़ा था। उसकी आयु अभी केवल तेरह वर्ष की होगी। उसके मुख पर अभी भी बालभाव था। विवाह हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था और वह अभी पितृगृह में ही थी जो यहाँ से दो-तीन कोस पर था। आज भोर ही में उसको वैधव्य का समाचार मिला था और उसे वहाँ से पति के साथ सहगमन करने को बुलाया गया था। उसी की प्रतीक्षा में कई घण्टा तक चिता नहीं प्रज्वलित की गई थी। बालिका को होश नहीं था। उसे लोग

और धतूरा अधिक मात्रा में पिलाया हुआ था। वह सीधी नहीं बैठ सकती थी। दो प्रौढ़ा ब्राह्मणियाँ उसे दोनों ओर से मजबूती से पकड़ बैठी थीं।

इसी समय चिता की सब तैयारी सम्पूर्ण हो गई। किसी ने उच्च स्वर से कहा—'सती को गंगा स्नान करा कर चिता पर लाओ। ब्राह्मणियों ने उसे उठाकर एक डुबकी दी। एक बार उसने आँखें खोलीं पर फिर उसकी आँखें बन्द हो गईं। एक प्रकार से घसीटते हुए उसे चिता तक लाया गया। चिता पर उसे मृत पति के चरण गोद में रखकर बैठा दिया गया। गोद में बहुत-सा कपूर घृत में डुबा कर रख दिया गया। जगह-जगह घृत और राल चिता पर छिड़क दी गई। एकाएक सब बाजे ढप ढोल दमामे जोर से बज उठे। चिता में आग लग गई। चिता ज्वलनशील-पदार्थों के संयोग से एक बारगी ही जल उठी। बाजों के शब्द से या आग की असह्य ज्वाला से या मृत्यु के प्रत्यक्ष दर्शन से वह बालिका एकाएक चैतन्य हो गई। वह जोर से चीत्कार कर सुबकती हुई चिता से कूद पड़ी।

यह देख पाँच-सात ब्राह्मण क्रोध से तमतमाते आगे बढ़े। 'अधर्म! पाप! कलियुग! घोर कलियुग!' आदि शब्द उनके मुँह से निकले। उनके हाथ में गीले बाँसों की बनी एक-एक ठठरी थी। जो कदाचित् इसी समय के लिए बनी हुई थी। उसी ठठरी से उन्होंने बालिका का स्वागत किया। वह ठठरी के बोझ से छटपटाने और आर्तनाद करने लगी। पर इसी समय उन ब्राह्मणों ने उसे हाथों-हाथ उठा कर चिता में डाल दिया। चिता की आग अब प्रचण्ड हो चुकी थी। बालिका का मानो ज्ञान कहीं गायब हो चुका था। वह मृत्यु को प्रत्यक्ष देख रही थी। उसकी दोनों आँखें फटी हुई थीं और वह दोनों हाथ ऊपर उठा कर फिर चिता से भागना चाह रही थी कि क्षण ही में उस

ब्राह्मणों ने वहीं बाँसों की ठठरी उसके ऊपर डाल कर उसे दबोच दिया। एकाएक बालिका के बालों और वस्त्रों में आग लग गई। बाजे फिर जोर से बज उठे। बालिका का चीत्कार बाजों के तुमुल नाद में खो गया।

इसी समय बन्दूक का शब्द हुआ। एक-दो-तीन-चार। लगातार बन्दूकों के छूटने और गोलियों से आहत हुए स्त्री-पुरुषों के चीत्कार से उपस्थित भीड़ में हलचल मच गई। जिसका जिधर मुँह उठा भाग निकला। निरन्तर बन्दूकों की बाढ़ दागते हुए तीन-चार फिरंगी चिता के निकट तक चले आए। एक ने साहस करके चिता पर चढ़ कर बालिका को उठा कर गेंद की तरह बाहर फेंक दिया। दूसरे फिरंगी ने उसे हाथों-हाथ ले लिया। वह साहसी फिरंगी भी चिता से कूद पड़ा। इस समय तक सब लोग वहाँ से भाग चुके थे। फिरंगियों ने फिर उन पर गोलियों की बाढ़ दागी और मूर्छित बालिका को लेकर गंगा की ओर चल दिया। गंगा तट पर एक नाव बँधी थी। उस पर तीन चार मल्लाह खड़े थे। उन्होंने सहारा देकर फिरंगियों को नौका पर बिठाया। नौका गंगा के बीच धार में तेजी से चल दी। गंगा के बीच में एक नौका खड़ी थी। नौका में कोई बीस सशस्त्र गोरे थे। बीच में एक छोटा-सा छप्पर का घर था। बालिका को लेकर फिरंगी उस पर से चढ़ गए। एक ने हुक्म दिया, नौका खोल दो और बहाव में जाने दो। सिपाहियों को हुक्म दिया—कोई नाव हमारा पीछा करे तो गोली चला दो। नौका तेजी से चल दी।

जो साहसिक फिरंगी बालिका को चिता से उठा लाया था, उसका नाम मेकडानल्ड था। कलकत्ते की ग्यारह नम्बर गोरी रेजीमेंट में वह लेफ्टिनेंट था। नौका में उसकी रेजीमेंट की एक टुकड़ी थी। नौका सरकारी थी और वह गंगा में गश्त के लिए निकली थी। उन दिनों गंगा में जो जल-डकैतियाँ होती थीं उन्होंने कम्पनी तथा व्यापारी नावों की सुरक्षा आदि के लिए यह नौका गंगा सागर तक गश्त लगाया करती थी। लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड इसका अफसर था। ज्योंही नौका गौरीपुर घाट के निकट पहुँची—लेफ्टिनेंट ने सुना कि वहाँ एक स्त्री को सती किया जा रहा है। वह तुरन्त आठ-दस सैनिकों को संग ले किनारे पर उतर आया और ठीक समय पर उसने बालिका की रक्षा उस भयंकर मौत से कर ली। नौका पर फौजी डाक्टर भी था। उसने बालिका का समुचित उपचार किया। अभी उसके शरीर को कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुँची थी। सिर्फ बाल झुलस गए थे और कपड़ों में आग लग गई थी तथा वह इस समय गहरी मूर्च्छा में थी। डाक्टर ने उपचार के बाद गर्म पानी में मिलाकर थोड़ी ब्रांडी उसके मुँह में डाली और कहा—अब इसे आराम करने दिया जाय।

नौका पर कोई स्त्री न थी। इससे लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड बहुत व्यग्र भाव से कोठरी से बाहर आए और एक बंगाली खलासी से कहा—किनारे पर कोई गाँव आने पर नौका रोक दो और एक हिन्दू दाई लेकर आओ।

गाँव आया। फिरंगियों की नाव पर कोई औरत आने को राजी नहीं होती थी। बड़ी कठिनाई से एक बुढ़िया राजी हुई। वह नौका पर आकर बालिका की सुश्रूषा डाक्टर के कहे अनुसार करने लगी। लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड बाहर आ सन्तुष्ट भाव से पाइप पीने लगे।

रात भर कोशा चलती रही । सूर्योदय होने से कुछ पूर्व ही बालिका की मूर्च्छा भंग हुई । उसने दाई को देखकर पूछा— म कहाँ हूँ ।"

तुम फिरंगियों की नाव पर हो ।"

"तुम कौन हो ? '

'मैं तुम्हारी दासी हूँ अब तुम सो जाओ मैं साहब को खबर करती हूँ ।

वह चली गई । सूचना पाकर लफ्टिनेंट और डाक्टर भीतर आए । बालिका होश आने पर भी हतज्ञान थी । सामने दो गोरों को आते देख चीख मार कर फिर बेहोश हो गई ।

डाक्टर ने आवश्यक हिदायतें दाई को दी और बाहर चले गए।

दिन भर और फिर रात भर कोशा चलती चली गई । दाई मूर्च्छित अवस्था में ही थोड़ी मिला दूध उसके मुँह में डालती रही ।

प्रातःकाल होने पर उसे होश आया । सूचना पाकर डाक्टर और लेफ्टिनेंट भीतर आए ।

डाक्टर ने दया कर कहा—अब कोई भय नहीं है । आप बातें कीजिए । इतना कहकर डाक्टर बाहर चले गए । लफ्टिनेंट टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में बातें करने लगे । उन्होंने कहा—

"फकर नहीं, अब डर का बाट न । टुम अच्छा होगा तो अम टुमकूं टुम बालगा भजने सकेगा ।"

साहब आप कौन हैं ?"

अम लेफ्टिनेंट मकडानल्ड । कम्पनी सरकार का आदमी ।"

"म यहाँ कैसे आई ।"

"टुम कुछ याद करता हाय ?

'इतना याद आता है—कोई बुरा सपना देखा था । व मुझे जला रहे थे । बड़ी भारी आग थी । उस आग में सारी दुनिया जल रही थी । किसने मुझ उस आग से बचाया ।"

जो साहसिक फिरंगी बालिका को चिता से उठा लाया था उसका नाम मेकडानल्ड था। कलकत्ते की ग्यारह नम्बर गोरी रेजीमेंट में वह लेफ्टिनेंट था। कोशा में उसकी रेजीमेंट की एक टुकड़ी थी। कोशा सरकारी थी और वह गंगा में गश्त के लिए निकली थी। उन दिनों गंगा में जो जल-डकैतियाँ होती थीं उन्हीं की देख रेख तथा व्यापारी मार्गों की सुरक्षा आदि के लिए यह कोशा गंगा सागर तक गश्त लगाया करती थी। लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड इसका अफसर था। ज्योंही कोशा गौरीपुर घाट के निकट पहुँची—लेफ्टिनेंट ने सुना कि वहाँ एक स्त्री सती किया जा रहा है। वह तुरन्त आठ-दस सैनिकों को संग ले किनारे पर उतर आया और ठीक समय पर उसने बालिका की रक्षा उस भयंकर मौत से कर ली। कोशा पर फौजी डाक्टर भी था। उसने बालिका का समुचित उपचार किया। अभी उसके शरीर को कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुँची थी। सिर्फ बाल झुलस गए थे और कपड़ों में आग लग गई थी तथा वह इस समय गहरी मूर्च्छा में थी। डाक्टर ने उपचार के बाद गर्म पानी में मिलाकर थोड़ी ब्रांडी उसके मुँह में डाली और कहा—अब इसे आराम करने दिया जाय।

कोशा पर कोई स्त्री न थी। इससे लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड बहुत व्यग्र भाव से कोठरी से बाहर आए और एक बंगाली खलासी से कहा—किनारे पर कोई गाँव आने पर कोशा रोक दो और एक हिन्दू बाई जैसे बने ले आओ।

गाँव आया। फिरंगियों की नाव पर कोई औरत आने को राजी नहीं होती थी। बड़ी कठिनाई से एक बुढ़िया राजी हुई। वह कोशा पर आकर बालिका की सुश्रूषा डाक्टर के कहे अनुसार करने लगी। लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड बाहर आ सतुष्ट भाव से पाइप पीने लगे।

रात भर शुश्रूषा चलती रही। सूर्योदय होने से कुछ पूर्व ही बालिका की मूर्च्छा भंग हुई। उसने दाई को देखकर पूछा—"मैं कहाँ हूँ।"

'तुम फिरंगिया की नाव पर हो।"

तुम कौन हो?

'मैं तुम्हारी दासी हूँ। अब तुम सो जाओ मैं साहब को खबर करती हूँ।

वह चली गई। सूचना पाकर लेफ्टिनेंट और डाक्टर भीतर आए। बालिका होश आने पर भी हतज्ञान थी। सामने दो गोरों को आते देख चीख मार कर फिर बेहोश हो गई।

डाक्टर ने आवश्यक हिदायतें दाई को दीं और बाहर चले गए।

दिन भर और फिर रात भर शुश्रूषा चलती चली गई। दाई मूर्च्छित अवस्था में ही थोड़ा थोड़ा दूध उसके मुँह में डालती रही।

प्रातःकाल होने पर उसे होश आया। सूचना पाकर डाक्टर और लेफ्टिनेंट भीतर आए।

डाक्टर ने देख कर कहा—अब कोई भय नहीं है। आप बातें कीजिए। इतना कहकर डाक्टर बाहर चले गए। लेफ्टिनेंट टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में बातें करने लगे। उन्होंने कहा—

'फिकर मती करो का बात से। टुम अच्छा होगा तो हम तुमकू टुम वालगा भेजन सकेगा।

साहब आप कौन हैं?

हम लेफ्टिनेंट मेकडानल्ड। कम्पनी सरकार का आदमी।"

मैं यहाँ कैसे आई।

'टुम कुछ याद करता हाय?

'इतना याद आता है—कोई बुरा सपना देखा था। वे मुझे पकड़ रहे थे। बड़ी भारी आग थी। उस आग में सारी दुनिया जल रही थी। किसने मुझे उस आग से बचाया।"

"परमेसुर गाड ने फेवर सेंडी" हम मौक ठीक पहुँचा। हमारा मिहनत कारगर हुआ। टुमारा जान बच गया?"

बेचारी बालिका इतना भी नहीं समझ सकी कि साहब को धन्यवाद देना चाहिए। उसने भीतमुद्रा से कहा—

'लेकिन वे लोग कौन थे?"

'शयतान हाय। बट अभी टुम तो जाय कमजोर है। बात फिर होगा।

'वे मुझे फिर तो नहीं बसायेंगे?"

'नो नो डियर दे कैन नॉट कम। टुम इत्मीनान से रहो।

युवती चुप हो गई। उसने आँखें बन्द कर लीं। उसकी आँखों से आँसू ढरक चले।

साहब तेजी से बाहर चले गए।

काया चलती गई। बालिका फिर होश में आई। थोड़ा दूध और मछली का शोरबा उसे दिया गया। तब साहब ने उससे फिर बात की। भाषा की दिक्कत से बात बड़ी कठिनाई से हुई। बातचीत का सारांश यह था कि मेरा कोई नहीं है। अब मुझे वहाँ मत भेजिए। साहब ने स्वीकार किया—वहाँ तुम्हें नहीं भेजा जायगा।

अब साहब चिंता में पड़े—कहाँ इस स्त्री को भेजा जाय। सैनिक सन्निवेश में वह उसे अपने साथ नहीं रख सकते थे। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने कर्त्तव्य निर्णय कर लिया।

कलकत्ता आ गया। अभी डेढ़ पहर दिन शेष था।

*

गौरीपुर में कुलीन ब्राह्मणों की पंचायत जुटी। आस-पास के दस-बीस गाँव के कुलीन ब्राह्मण आए। सब के नेता थे हरिदास तर्क पंचानन। पंचानन महाशय दस-बीस विद्यार्थियों का झुण्ड साथ लाए थे। वे अपनी शिष्य मण्डली सहित फर्श पर बीच में डटे बैठे गंभीरतापूर्वक नारियल पी रहे थे। शिष्यवर्ग एक के बाद दूसरी चिलम चढ़ा रहे थे। दूसरे थे—रामदास शिरोमणि। आयु इनकी कम थी पर कुलीनों के शिरोमणि थे। तीसरे थे, चण्डीचरण विद्यारत्न उनका भी बड़ा दबदबा था। इधर-उधर के ब्राह्मण बहुत जमा थे। सब अपनी-अपनी हाँक रहे थे। मामला बहुत गंभीर था। राधा मोहन मजूमदार गौरीपुर के जमींदार तो थे ही—जाति में भी बीस बिस्वे कुलीन थे। उनकी सती हाथी हुई पुत्रवधू को म्लेच्छ उठा ले गए। महा अनर्थ—घोर अन्याय हो गया था। धर्म का बेड़ा ही गर्क हो गया। अब प्रश्न यह था कि राधामोहन मजूमदार को बिरादरी से खारिज किया जाय या नहीं। राधामोहन नीचा सिर किए शोकाभिभूत हुए चुपचाप बैठे थे।

तर्क पंचानन ने कहा—'क्यों रामदास अब क्या किया जाय। तुम क्या कहते हो?'

रामदास ने कहा—'आप बड़े हैं सब शास्त्रों के ज्ञाता हैं जाति में पूज्य हैं। आपके सामने मैं क्या कह सकता हूँ आप ही कहिए।'

'मैं अब इसमें क्या कहूँगा। राधामोहन की पुत्र-वधू का अपहरण हुआ है। वे जाति में तो नहीं रह सकते।'

'कैसे रह सकते हैं। जिसकी पुत्र-वधू म्लेच्छों के हाथों में पहुँच गई वे हम कुलीन ब्राह्मणों की जाति में कैसे रह सकते हैं?'

"तो बस, उनका हुक्का-पानी बन्द। नाई-धोबी भी बंद। तुम क्या कहते हो चन्डीचरण ?"

'आपने शास्त्रीय मर्यादा की ही बात कही है।"

अब रामा मोहन ने कहा— 'किन्तु तर्क पंचानन महोदय आप यह तो बताइए कि इसमें मेरा क्या दोष है ?

'दोष बहुत है। आपकी पुत्रवधू भ्रष्ट हो गई। इससे उसका पितृकुल भी भ्रष्ट हो गया और श्वसुर कुल भी।

तर्करत्न महाशय कुछ तो मरी दशा पर तरस खाइए। मेरे कष्ट को देखिए।"

'तो भाई तुम्हारे कष्ट के लिए समाज को तो पतित नहीं किया जा सकता। कहो—कल को यह फ़िरंगी तुम्हारी बेटी को मेम बना कर गाँव में आ गया तो हम उसे जमाई थोड़े ही मान लेंगे? हाँ तुम्हारी बात जुदा है। जैसा चाहे करो।

'सो यही बात ठीक रही—तर्करत्न महाशय परन्तु बहू के पिता के लिए क्या होगा ?"

अरे भाई ससुर कुल की भाँति पितृकुल भी तो पतित हो गया। यही व्यवस्था उसके लिए भी है।

रामा मोहन मजूमदार के पाँच सौ रुपए तर्क पंचानन महाशय पर पावने थे। उसकी अदालती डिग्री भी हो गई थी। अब उसी बात को याद कर रामा मोहन ने थोड़ा क्षोभ करके कहा— 'अच्छी बात है तर्क पचानन जी आप हुक्का-पानी नाई-धोबी बंद कर सकते हैं। अदालती प्यादों को तो नहीं रोक सकते। कुर्की-डिग्री तो नहीं रुक सकती।

तर्क पंचानन डर गए। उनका हाथ का नारियल वहीं रुक गया। हाथ काँपने लगे। डिग्री की बात बहुतों को मालूम थी। जिन

मासूम थी वे तर्क पंचानन को चिढ़ाने के लिए बोले—"नहीं डिप्टी-कुर्की को पंचायत कैसे रोक सकती है।'

अच्छी बात है, तो मैं अब जाता हूँ। क्षोभ करके राधामोहन उठ खड़े हुए। अब तर्क पंचानन का संकेत पाकर चण्डीचरण बोले—'ठहरो राधामोहन एक बात है।

कौन-सी बात अब रह गई।

'तुम वृन्दावन जाकर शुद्धि कर आओ।

और जो मैं न जाऊँ तो ?

'तो भाई सपरिवार बरागी बन जाओ। तीसरी राह नहीं है।'

'क्यों नहीं है। मैं इस जाति बिरादरी पर लात मारता हूँ। आज से मैं ब्राह्मण हूँ ही नहीं मैं ब्रह्मो समाज में दीक्षित होऊँगा।"

'अब तो तुम स्वयं ही पतित हो रहे हो।

'पतित तुम हो जो कूप मण्डूक बन रहे हो। तुम रूढ़िवादी, स्वार्थी हो। पराया दोष देखना तुम्हारा काम है। अपनी आँख का शहतीर तुम्हें नहीं दीखता पर दूसरे की आँख का तिनका भारी मालूम होता है। मेरी पुत्रवधू दूधपीती बच्ची थी। मैं उसे सती करना नहीं चाहता था। मेरा एक ही पुत्र था—वह मर गया, तो मैंने बहू को ही पुत्र के समान प्यार करना चाहा था। मेरे घर में स्त्री नहीं है। कोई दूसरा भी मेरा आत्मीय नहीं है। पर तुम क्रूर, हिंसक मठियों ने मुझे वह भयानक काम करने को विवश किया। पर ईश्वर ने उसकी रक्षा कर ली। मैं तो गुण हूँ। ईश्वर करे वह जीवित हो और मैं उसे अपनी पुत्री की भाँति पालन करूँ तथा अपनी सारी सम्पत्ति उसी के नाम करूँ।"

'और यदि वह म्लेच्छ हो गई हो ?'

"तो भी क्या हर्ज है। क्रिस्तान तुम्हारे जैसे नीच, क्षुद्राशय क्रूर और अधर्मी नहीं हैं। वह क्रिस्तान भी हो गई होगी, तो भी मैं अपनी सब सम्पत्ति उसी को दूँगा। यही मेरा ध्रुव निश्चय है। मैं अब इस गाँव में—जहाँ तुम जैसे नर पिशाचों के अपवित्र चरण पड़ते हों रहूँगा भी नहीं। मैं कलकत्ते जा बसूँगा। जिससे फिर कभी मुझे तुम्हारा मुँह न देखना पड़े। तर्कपंचानन महाशय तुम्हारे ऊपर जो मेरी पाँच सौ रुपए की डिग्री है वह मैं छोड़ता हूँ। तुम्हारे ऊपर का ऋण माफ करता हूँ। और रामदास महाशय गत वर्ष जो कलंक का काम तुम्हारी विधवा बेटी ने किया था और जिसे तुमने जहर देकर मरवा डाला था तुम्हारी यह कलंक गाथा भी मैं किसी से नहीं कहूँगा। जिस पर मेरा लेना-पावना बकाया है वह सब मैं छोड़ता हूँ। किन्तु मैं अब न तुम्हारे साथ गाँव में रहूँगा न तुम्हारी इस घृणित बिरादरी में।

इतना कह कर राममोहन तेजी से वहाँ से उठ गए। धर्मप्राण ब्राह्मण शिरोमणि जमा का मुँह ठीकरे के समान स्याह हो गया।

★

४ ।

कलकत्ते के उत्तरी विभाग में 'लाल बाजार' एक पुराना स्थान है। नवाबी अमलदारी के समय यहाँ फौजदारी थानाखाने में हुगली के फौजदार आकर कचहरी किया करते थे। आरमीनियम पुर्तगीज तथा उच्च व्यापारी इसी पश्चिमी भाग में बसे हुए थे। लाल बाजार के पश्चिम में 'लाल दीघी' है। इसका अंग्रेजी नाम 'टास्क स्क्वायर' है। जिन दिनों की बात हम लिख रहे हैं—उन दिनों 'टास्क स्क्वायर' के

एक पार्श्व में एक छोटा-सा सफेदी किया हुआ एकमंजिला मकान था। मकान में रवरेण्ड पादरी जॉनसन रहते थे। जानसन बड़े सज्जन और दयालु पुरुष थे। वे लन्दन की क्रिश्चियन मिशनरी सोसाइटी की ओर से भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने आए थे और अब उन्हें कलकत्ते में रहते बीस वर्ष हो गए थे। वे एक विद्वान् और शान्त प्रकृति के पुरुष थे। कलकत्ते के सभी छोटे-बड़े सफेद अफसर और हिन्दुस्तानी लोग भी उनका बहुत आदर करते थे। शुरू-शुरू में बंगाली जन फ़ादर शब्द का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने इस नाम का भारतीयकरण करके 'पादरी' शब्द बना लिया था और वे सब भारतीय ईसाई फादर जानसन को पादरी साहब कहकर पुकारते थे। आगे यह पादरी शब्द सभी ईसाई मिशनरियों के लिए आम हो गया। पादरी जानसन बड़े सच्चरित्र भी थे। कहना चाहिए कि वे अंग्रेजों में अपवाद थे। उनकी पत्नी भी बहुत नेक थीं। पहले वह एक धनी उच्च व्यापारी की पत्नी थीं। उसके मरने पर उन्होंने पादरी साहब से विवाह किया। यद्यपि उनकी आयु विवाह के समय पचास वर्ष की थी और पादरी साहब से कुछ अधिक ही थी परन्तु दोनों बहुत प्रेम से रह रहे थे। मेम साहब के धन से पादरी साहब ने एक छोटा-सा अनाथालय और अस्पताल खोल रखा था। अनाथालय का प्रबन्ध खुद उनकी पत्नी करती थीं और अस्पताल पादरी साहब खुद चलाते थे। उन्होंने विलायत ही में थोड़ी डाक्टरी की शिक्षा पाई थी। उसी से वे सबकी सहायता करते थे। इन दोनों कामों से उनका उद्देश्य खूब पूरा हो रहा था। बहुत से स्त्री-पुरुषों और अनाथ बालकों को उन्होंने ईसाई बना लिया था।

लेफ्टिनेंट मैकडानल्ड ने चिता से उद्धार की हुई बालिका को इन्हीं जानसन साहब की संरक्षा में रख दिया। पादरी ज

बहुत अच्छी बंगला भाषा जानते थे। बालिका के रूप, शील और बुद्धि को देख वे बहुत प्रभावित हुए। बालिका का असली चिता से उद्धार किया गया है, यह सुनकर वे द्रवित हो गए। उन दिनों बंगाल में सती का बड़ा प्रचार था। तथा वहाँ बचपन ही में हिन्दू ब्याह कर देते थे इसलिए बहुधा दुधमुँही बच्चियां को निर्दयतापूर्वक जला दिया जाता था। इससे सभी अंग्रेज हिन्दुओं की इस क्रूर प्रथा के प्रबल विरोधी थे। इसी से उन्होंने यत्नपूर्वक इस बालिका को अपने यहाँ आश्रय दिया और उसे अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य एवं बंगला तथा फारसी की शिक्षा भी लेफ्टिनेंट के अनुरोध से देने लगे।

पादरी साहब के पास कभी-कभी एक हिन्दू युवक आया करता था। अभी इसकी आयु बाईस बरस की ही थी। यह बंगाल के उच्च धनी ब्राह्मण परिवार का युवक था तथा शिक्षित और मेधावी था। कलकत्ते में केवल यही एक तरुण ऐसा था, जो बाल विवाह और सती प्रथा का विरोधी था। बचपन ही से इस तरुण का झुकाव धर्म विवेचना की ओर था। इस समय तक भी बंगाल की राजभाषा उर्दू ही थी। और सब प्रतिष्ठित बंगाली उर्दू का विद्वान् बनने के लिए फारसी भाषा पढ़ना आवश्यक समझते थे। इनके पिता रामकान्तराय बड़े कट्टर हिन्दू थे। माता भी धर्मप्राण साध्वी थी। परन्तु यह तरुण नई प्रतिभा का था। पिता ने उसे फारसी का आलिम बनाने के लिए पटना भेज दिया था वहाँ उसने फारसी के साथ अरबी भी पढ़ी और कुरआन का पाठ भी किया। इस्लाम और उसके तसव्वुफ का उस पर प्रभाव पड़ा तथा कुरआन को पढ़ने के बाद उसके मन में एकेश्वरवाद का बीज अंकुरित हुआ। यहीं उसकी भेंट प्रसिद्ध दार्शनिक सुरेश्वराचार्य से हुई। उनसे इन्होंने उपनिषद् पढ़ा। और ब्रह्मजिज्ञासा पर मनन किया। देवता और मूर्तिपूजा से ये विमुख हो गए तथा अंग्रेजों के

सम्पर्क और अंग्रेजी पढ़ने से सुधारवादी भी हो गए। इसी से इनके पिता इनसे रुष्ट रहने लगे तो भी इन्होंने अपना मत बदला नहीं। उन्होंने 'तुहफ़तुल मुवाहिदीन' नामक एक पुस्तक फ़ारसी भाषा में लिखी, और उसकी भूमिका अरबी में लिखी—जिसमें एकेश्वरवाद की प्रशंसा थी। वे रंगपुर के कलक्टर के दीवान थे और अब नौकरी छोड़ कर कलकत्ते आ गए थे तथा हिब्रू और ग्रीक भाषा पढ़ रहे थे जिससे वे यहूदी और ईसाई बाइबिल का अध्ययन मूल भाषाओं में कर सकें। पादरी जानसन के सौजन्य और सद्विवेक से वे बहुत प्रभावित थे। और बहुधा उनके पास आकर धार्मिक और सामाजिक मामलों में वाद विवाद करते रहते थे। पादरी जानसन का विश्वास था कि एक दिन यह भद्र कुलीन धनी बंगाली ब्राह्मण अवश्य ईसामसीह की शरण आएगा। अतः वे उसकी बहुत आवभगत करते थे तथा प्रेम से वार्तालाप भी करते थे। तरुण का नाम राममोहन राय था। आगे चलकर यही तरुण राजा राम मोहन राय के नाम से ब्रह्मसमाज के मूल संस्थापक के रूप में संसार में प्रसिद्ध हुए। हाल ही में वह बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए तिब्बत की हजारों मील की दुरूह यात्रा दस करके भारत में लौटे थे। इससे भी इनका नाम भारतीय तथा अंग्रेज दोनों ही में काफी प्रसिद्ध हो गया था।

राममोहन के आते ही पादरी ने उनका स्वागत करते हुए कहा—'आज तो मैं बहुत ही हर्षित हूँ।'

'यह सुन कर मैं प्रसन्न हुआ। किन्तु क्या इस हर्ष का कोई विशेष कारण है?'

पादरी साहब ने मालिनी की हृदयविदारक करुण कहानी कह सुनाई। राममोहन ने बालिका से भेंट की। उसी के मुँह से उसकी

दुर्भाग्य की कहानी सुनी। सुन कर उसकी आँखों से चौधारा आँसू बहने लगे।

फादर जानसन ने कहा—'यदि लेफ्टिनेन्ट मेकडानल्ड जान पर खेल कर उसके प्राण न बचाता तो वह अब तक जल कर राख का ढेर हो गई होती। यह तो तुम जानते ही हो कि आजकल हिन्दू स्त्रियाँ और खास कर विधवाओं की कितनी दुर्दशा है। तुम्हारे जैसे तरुण को इसके विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। हमारी आवाज वे नहीं सुनते। हमें व विदेशी और विधर्मी कहते हैं। पर तुम तो उसी धर्म में पैदा हुए हो तुम्हारी आवाज वे अनसुनी नहीं कर सकते।

'मेरी अनुपस्थिति में मेरे बड़े भाई का देहान्त हो गया तथा मेरी भावज सती हो गई। मेरे दिल पर इसका दाग है। मैं जानता हूँ कि देश में प्रति वर्ष सैकड़ों-हजारों निरीह स्त्रियाँ इस प्रकार जीवित जला दी जाती हैं। मैं चाहता हूँ कि इस विषय में मैं ऐसी आवाज बुलन्द करूँ कि बहरा भी उसे सुन ले।'

'हमारे घरों में विधवा स्त्रियों को जो आजीवन कष्ट भोगना पड़ता है उसे मुझसे अधिक कौन जानता है। यह कष्ट और अपमान इतना असह्य है कि उसकी अपेक्षा इस प्रकार चिता पर जल मरना वे पसन्द करती हैं। जन्म भर दारुण दुःख भोगने की अपेक्षा यह क्षण भर का कष्ट उन्हें अखरता नहीं। पर इस अबोध बालिका की तो बात ही जुदी है। जिसने पति को देखा तक नहीं पति मर गई ही नहीं। पति-पत्नी-सम्बन्ध क्या होते हैं यह यह जानती ही नहीं।

'मैंने १८२७ की रिपोर्ट में सरकारी आँकड़े देखे हैं। उस साल बंगाल में ३०१ स्त्रियाँ जीवित जलाई गई थीं। परन्तु यह अधूरी रिपोर्ट थी। इससे प्रथम १८१५-१८१८ तक तीन वर्षों में कम से कम साढ़े तीन हजार विधवाएँ जीती जलाई गई हैं जिनमें बहुत-सी इसी

बालिका की भाँति अबोध थी। अकेले कलकत्ते के आस पास के स्थानों में जलाई गई विधवाओं की संख्या दस हजार से कम नहीं है।"

"मैं तो इसे एक जातीय क्षय रोग समझता हूँ। यह भारत के माथे पर कलंक का टीका है फादर।

"निस्संदेह राममोहन यह भारतीयों की ज्ञानशून्यता और गिरावट का चिह्न है।

मैं तो इसके निवारण के तीन सूत्रों को महत्त्व देता हूँ यदि सरकार हमारी सहायता करे तो ही सफलता प्राप्त हो सकती है ?

'तीनों सूत्र कौन-से हैं ?

"प्रथम सती प्रथा का कानूनन विरोध। दूसरे पुनर्विवाह का कानूनन वैध माना जाना। तीसरे स्त्रियों के उत्तराधिकार का जोरदार समर्थन। बिना इन तीन सूत्रों के भारतीय स्त्रियों की दशा नहीं सुधर सकती।

'तुम ठीक कहते हो धर्मात्मन्। इस काम में मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

'आपकी बड़ी कृपा है फादर, मैं शीघ्र ही सती प्रथा के विरोध में एक पुस्तक लिखूँगा और मैंने जो बंगला पत्रिका 'कौमुदी' निकालना आरम्भ किया है उसमें तो मैं सती प्रथा पर लगातार एक लेख लिखता हूँ। आपने उसे अवश्य देखा होगा।

'नहीं मैंने तो नहीं देखा! लेकिन इस सब काम के लिए मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ राममोहन।"

वह पत्रिका मैं आपके पास भेजूँगा।

'जरूर भेजना। पर मेरी राय है कि तुम एक रिलिजियस कमेटी बनाओ और बंगाल भर में उसकी शाखाएँ फैला दो। इस कमेटी के सदस्यों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे जहाँ भी सती होने का

समाचार पाएँ, वहाँ पहुँच कर उसे रोकें और सरकार को भी सूचना दें।"

"आपका प्रस्ताव उत्तम है। मैं अवश्य ही ऐसा ही करूँगा।"

'बहुत बहुत धन्यवाद राममोहन। तुम्हें कदाचित मालूम हो कि इस समय कौंसिल में दो विवाद ऐसे उठ खड़े हुए हैं जिनमें हमारे गवर्नर-जनरल सर विलियम बेंटिंग को बहुत दिलचस्पी है। पर देशवासियों में मतभेद है।

'कैसा विवाद ?'

'एक तो यही सती-प्रथा का दूसरा भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रचार का।

'मैं तो कह ही चुका—मैं सती प्रथा का कट्टर विरोधी हूँ और उसे समाप्त करने में मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा बकी का उठा न रखूंगा।"

'और दूसरे विषय में तुम्हारी क्या राय है ?

'स्पष्ट है कि इस समय केवल फारसी या संस्कृत शिक्षा पर्याप्त नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मेरे देशवासी प्राचीन पद्धति की शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा और नवीन विषयों की भी शिक्षा प्राप्त करें। मैं अंग्रेजी की उपादेयता की ओर भी देशवासियों का ध्यान खींचने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

शाबाश मेरे नवयुवक दोस्त। तुम तो एक सच्चे ईसाई की तरह बोल रहे हो फिर क्या कारण है कि तुमने अभी तक बपतिस्मा नहीं लिया और अभी तक उस नापाक मजहब के चक्कर में पड़े हो।

'फादर, मैं पैदा ही नहीं हुआ हूँ। क्या किया जाय। फिर मैं उसे नापाक भी नहीं मानता। कदाचित् आपने उपनिषद् की पवित्र वाणी कभी नहीं पढ़ी जो ब्रह्म जिज्ञासा का रहस्य मनुष्य के सामने खोलती है।

"क्या उसमें ऐसी बातें हैं जो होली बाइबिल में नहीं।

"है फादर।

'हो नहीं सकता है। प्रभु ईसामसीह की सियामत तो होली बाइबिल ही है।

'पर उपनिषद् तो प्रभु ईसामसीह से बहुत पुरानी है।

'पुरानी होने से क्या हुआ। उनमें होंगे तो वही झूठे किस्से-कहानियाँ।

'उनमें 'कस्सा-कहानी नहीं है उनमें ब्रह्म का भेद बताया गया है। जो अक्षर है अगोचर है और अविनाशी है।

माई गाड मेरे प्यारे तुम इतने अच्छे नौजवान होकर कैसे ऐसी वाहियात बातें कर रहे हो!

राममोहनराय हँस पड़े। उन्होंने कहा— फादर मैंने अपने को कुएँ का मेंढक नहीं रहने दिया। मैं एक बहते दरिया के समान हूँ। जहाँ से जो ज्ञान मिलता है ले लेता हूँ। मैंने कुरान पढ़ा बाइबिल पढ़ा, फिर तिब्बत के गौरीशंकर पहाड़ों में जा कर बौद्धधर्म के रहस्य जाने। वेद-वेदान्तों और उपनिषद् का मनन किया, और भी कर रहा हूँ। आप भी ऐसा ही कीजिए फादर। सब धर्मों का सच्चा ज्ञान प्राप्त कीजिए।"

"शैतान ले जाय सब धर्मों को और उनकी गन्दी किताबों को भी। तुम फौरन प्रभु ईसामसीह की शरण आओ जो हमारी भैया का पार लगैया है।"

'फादर मेरे सामने इससे भी महत्त्वपूर्ण काम है। यह हमारे देश का अन्धकारपूर्ण और निराशा का काल है। सारा देश अशान्ति रूढ़ि और कुरीतियों के भँवर में फँसा है। मैं उनके मानसिक पराक्रम को उन्नत करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन कर रहा हूँ। परन्तु

यह नहीं चाहता कि भारतीय उच्छृङ्खल और नास्तिक हो जाय, और उन्हें भारतीय वस्तु तथा संस्कृति से घृणा हो जाय। मैंने ब्रह्म समाज की स्थापना की है जो आस्तिकवाद का धर्म है। इसका मूल सिद्धान्त एकेश्वरवाद है और आधार उपनिषद् है। इस अन्धयुग में मैंने सुधार का यह दीपक जलाया है फादर! रूढ़िवाद और नास्तिकता दोनों ही का उन्मूलन करके देशवासियों के मन में अपनी दशा सुधारने की प्रवृत्ति के अंकुर उत्पन्न करना चाहता हूँ।



५

पाँच वर्ष पूर्व चिता से उठाई गई बालिका फादर जानसन के निकट रही। अब उसकी आयु सत्रह वर्ष की हो चुकी थी। वह असाधारण सुन्दरी और प्रतिभाशालिनी लड़की थी। इस बीच उसने न केवल बहुत अच्छी अंग्रेजी सीख ली थी वह सब प्रकार के अंग्रेजी रहन-सहन व्यवहार सीख गई थी। वह अब अपने को पादरी जानसन की बेटी समझती तथा उन्हें फादर न कह कर पापा कहती थी। उसके रूप-यौवन और योग्यता को देख बहुत अंग्रेज अफसर उसके प्रणयाभिलाषी हुए थे। परन्तु प्रेम की गाँठ लेफ्टिनेंट-मेकडानल्ड के साथ उसकी बँध चुकी थी। मेकडानल्ड अब मेजर हो चले थे। वे बहुधा उससे मिलने के लिए आते रहते थे। पर उन्होंने

अभी उससे प्रणय निवेदन नहीं किया था। वे अभी केवल उसके संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मालिनी ने जो अब एक आकर्षक युवती बन चुकी थी अपना रहन-सहन तो बदल लिया था पर अपना नाम सुभद्रा नहीं बदला था। न अपना धर्म-विश्वास बदला था।

सुभद्रा के प्रणयाभिलाषी अनेक तरुण अंग्रेज अफसर थे। उन दिनों वे बहुधा भारतीय स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। परन्तु दो भारतीय ईसाई भी उम्मीदवार थे जो वास्तव में उसी के साथ पादरी साहब के घर में रहते थे और उनके घर का काम-काज किया करते थे। सुभद्रा उनकी दृष्टि भाँप गई थी और बहुधा उन्हें बनाया करती थी। इनमें एक था जान रामकृष्ण और दूसरा था टाम कालीनाथ। रामकृष्ण तो जात का डोम था। कालीनाथ मोची था। दोनों ने अब से ६-७ वर्ष पहले फादर जानसन से बपतिस्मा लिया था और वे उन्हीं के पास रहते थे। उन्हें बड़ी आशा थी कि ईसाई होने पर उनका ब्याह किसी गोरी चिट्टी मेम से हो जायगा पर छः-सात वर्ष प्रभु ईसामसीह का नाम रटते और पादरी साहब की सेवा करते बीत गए उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई।

टाम कालीनाथ मेम साहब के बूट साफ कर रहा था कि जान रामकृष्ण ऊपर से निकला। टाम कालीनाथ ने कहा— कहाँ चले दोस्त?

"बाजार जा रहा हूँ। बहुत सौदा-सुलफ खरीदना है।"

"अरे भाई, यह सौदा-सुलफ खरीदना और बूट साफ करना ही क्या हमारी जिन्दगी बनेगा?"

"तो फिर क्या करें? इतना निकम्मा भी तो हमें नहीं जाना कि पादरी साहब की सिफारिश से कहीं नौकरी करें।"

'अरे नौकरी गई भाड़ चूल्हे में । तुम यह कहो—ब्याह का क्या डौल है । कोई विलायती छोकरी तो नजर ही नहीं आती । किसी मेम का साहब मरता है और वह खाली होती है तो कोई न कोई साहब झपट्टा मार कर उसे ब्याह ले जाता है । हम देखते ही रह जाते हैं ।

अजी विलायती न सही मैं तो किसी बंगाली छोकरी से ही ब्याह करने को राजी हूँ । अब विलायती छोकरी की इन्तजारी क्या बुढ़ापे तक की जाय ।

तो बंगाली छोकरी तो यही है । घुमना नाम भी मजेदार है । गोरी चिट्टी भी है और तुमसे उस दिन हंस-हंस कर बात भी कर रही थी । मारो हाथ ।

'लेकिन फादर से कैसे कहूं । शर्म लगती है ।

'तो मैं कहूँ ?"

'कहो यार, जरूर कहो ।

'लेकिन मैं तो अपने लिए कहूंगा । तुम्हारे लिए क्यों कहूँ ?

'वाह छछुन्दर लगावे चमेली का तेल । यह मुँह और ये होसले ?'

अरे वाह रे बंदरमुँहे ईसूमसीह की कसम जब तू हँसता है ऐसा लगता है—जैसे गोबर के ढेर पर ओले पड़े हों ।

'ईसूमसीह तुझे गारत करें । तू जात का मोची है । या न जानता हो उसे भर्म पर चढ़ा ।

'और तू कहाँ का नवाब है । तू भी तो डोम है ।

'मैं तो प्रभु ईसूमसीह की शरण आकर अंग्रेजों की जात में मिल गया हूँ ।

'अंग्रेजों की जात में तू कैसे मिल गया ?"

"यह बात तू मोटी अक्ल का आदमी नहीं समझ सकता । फादर ने हमें समझा दिया है कि हम असली कास्ता क्रिस्तान हैं । हमारी औलाद यूरोपियन दोगला होगी और उनकी सन्तान अंग्रेज होगी । बस तीन पीढ़ी में हमारा खानदान अंग्रेज होगा ।

पर पहले अंग्रेज बीवी से शादी भी तो हो ।'

'हाँ यह एक जरा-सी बाधा है । पर मेरा मत दोस्त आज हम दोनों ही फादर से बात करेंगे ।

'जरूर करेंगे ।

"मगर फादर से ही बात करने से काम नहीं चलेगा । उस छोकरी से भी तो बात करनी होगी । उसका मन टटोलना होगा ।

'जरूर टटोलना होगा । हम दो हैं और वह एक । हम दोनों से तो वह ब्याह कर नहीं सकती ?

कैसे कर सकती है । लेकिन तुम कह रहे थे न—कि वह मुझ देख कर हँस-हँस कर बातें करती है । बस साफ बात है मन उसका मुझी पर पर लट्टू है ।"

'तो इसमें क्या ? मुझ भी वह ऐसी नजरों से देखती है—कि जैसे तीर मार रही हो बस घायल कर देती है ।'

"अब पादरी साहब उसे सबको अपनी बेटी बताते हैं । लड़की भी वह मामलिन की ही भाँति है । फर्राटे अंग्रेजी बोलती है । कपड़े क्या उम्दा—एक दम विलायती मेम जैसे ? मेम साहब भी उसे बराबरी का दर्जा देती हैं । बराबर नहीं—मुझे उसका भी जूता साफ करना पड़ता है ।"

'तो इसमें क्या हर्ज है । जूता तो ब्याह के बाद भी साफ किया जा सकता है ।"

"खैर, इसमें मैं कोई हर्ज नहीं देखता। लेकिन देखना यह है कि ब्याह वह हम दोनों में किस से करेगी।

"मुझी से करेगी और दोस्त उस का जूता साफ करने पर तुझी को नौकरी पर बहाल रखूंगा।

'कहीं मैं जूता खींच कर न दे मारूँ तेरे मुंह पर। साला, बदजात डोम। हम से तू अपनी जोरू का जूता साफ कराएगा ?

'तो बिगड़ता क्यों है यह तो तेरे बाप-दादे का पेशा है।

'मेरे बाप-दादे तो हिन्दू थे होगा उनका पेशा। मैं तो ईसाई हूं। हम क्रिस्टान साहब लोग है। देखता नहीं मेरी पतलून।

पतलून तो मैं भी पहनता हूँ तो तू मुझे डोम क्यों कहता है। मैं भी क्रिस्टान लोग हूँ।

'बेशक हम दोनों साहब लोग हैं। लो वह छोकरी आ रही है। हो जायें दो-दो बातें अभी।

अभी लो। पहले मैं ही पूछूँ।

'पूछ ले तुझे वह क्या पसन्द करेगी भला!

सुखदा ने निकट आकर बिगड़ कर कहा— 'तुम्हें मेम साहब ने बाजार भेजा था जॉन लेकिन तुम अभी यहीं गप्पें उड़ा रहे हो ?

'हम आप की शादी की बात कर रहे थे मिस साब मैं कह रहा था

सुखदा हंस दी। उसने कहा— 'तुम क्या कह रहे थे टाम ?

'यही कि—कि छछुन्दर लगावे चमेली का तेल।

सुखदा ज़ोर से हँस पड़ी। उसने कहा— 'यह चमेली के तेल की खूब रही।"

यही तो कहता हूं—मिस साब भला यह मोची। कहता हूँ छोटे मुँह बड़ी बात।"

"यह भी तो डोम है, डोम, मिस साब, इसका हौसिला तो देखिए ।"

"तो लड़ते क्यों हो । अब तो तुम क्रिश्चियन हो । क्रिश्चियन न डोम है न मोची । इन्सान है जैसे सब होते हैं । तुम साग पढ़-लिख कर साहब लोग हो सकते हो ।

'म सब कुछ होने को तैयार हूँ, मगर इस गधे को कैसे समझाऊँ ।"

"तू क्या पढ़ेगा ? बूढ़ा तोता पुरान पढ़ सकता है ।

'तो तू कहाँ का जवान है । मुँह में दाँत न पेट में आँत ।

'इसी से म बूढ़ा हो गया । साला बदजात, मे पटक दूँ तुझे उठा कर ।

"नहीं-नहीं लड़ो मत भले आदमियो । यह सभ्यता की बात नहीं है जगलीपन है । याद रखो—तुम लोग सभ्य साहब लोग हो ।

'तो मिस साब आप साफ-साफ कह दीजिए । बस झगड़ा टंटा खत्म ।

क्या कह दूँ ?"

'क्या म हमसा आपके जूते साफ नहीं करता ?

'और क्या मे हमसा आपका बिस्तर ठीक-ठीक नहीं लगाता ?"

'तुम दोनो बहुत अच्छे आदमी हो । हम तुम दोनो से खुश हैं बाबा टाम, जल्दी करो । आज शाम कुछ महमान डिनर पर आने वाले हैं । झटपट सोदा ले आओ ।

"लेकिन मिस साब, यह तो पास की बात हुई ।

"कौन बात टाम ?"

"आप हम दोनो से खुश हैं । क्या म आपकी सब से ज्यादा खिदमत नहीं करता ?'

"और मैं तो जी-जान से आपकी खिदमत में लगा रहता हूं।

'तो हम भी तुम दोनों से बहुत खुश हैं।

'लेकिन ज्यादा खुश किस से हैं आप? इसका फैसला अभी कर दीजिए।

"तुम जूता साफ कर रहे हो—और तुम्हें सौदा लाना है। बस आज तुम दोनों में से जो जल्दी काम खत्म करेगा—उसी से मैं ज्यादा खुश हो जाऊंगी।"

'तो अभी लीजिए। यह मैंने लगाया रगड़ा। टाम जल्दी-जल्दी जूते पर ब्रुश रगड़ने लगा।

और मैं भी भगा। आंख झपकता हुआ चला। खुमदा हंसती हुई भीतर चली गई।



६

जिस दिन टाम काशीनाथ और जान रामकृष्ण अपनी उम्मीदों पर खुशियां मना रहे थे। उसी शाम पादरी जॉनसन के बंगले पर एक शानदार डिनर का आयोजन था। डिनर वास्तव में कर्नल मेकडानल्ड के आदर में दिया गया था। डिनर में मेकडानल्ड के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे। एक थे तरुण बंगाली राममोहन राय दूसरे थे सर जॉन तीसरे स्वयं फादर जानसन और चौथी मिस खुमदा। भोज में अनेक प्रकार की देशी और विलायती शराब अनेक प्रकार के मांस और फल आदि थे। राममोहन राय केवल फल खा थे। यह देख खुमदा भी केवल फल खाने लगी। यह देख कर

मेकडानल्ड ने कहा— "यह क्या मिस, तुम केवल फल ही ले रही हो ? लो यह सैण्डविच तो जरा चखो, बहुत अच्छा बना है ।"

"धन्यवाद कर्नल, पर आज मैं केवल फलाहार ही करूँगी ।"

"यह किस लिए ?"

"आप देख नहीं रहे हैं । यहाँ हमारे परमबन्धु राय साहब उपस्थित हैं और वह केवल फल ही खा रहे हैं ।"

मेकडानल्ड ने जरा तीखी नजर से राममोहन राय की ओर देख कर कहा—

"महाशय, क्या आप मांस नहीं खाते ?"

"नहीं कर्नल, मुझे खेद है । मैं मांस नहीं खाता ।"

"इसका कारण ?"

"मांस खाने के लिए जीवहत्या करनी पड़ती है । वह मुझे पसन्द नहीं ।"

"और सब बंगाली ब्राह्मण तो मांस खाते हैं ।"

"केवल ब्राह्मण होने के कारण नहीं, प्राणियों पर दया भाव के कारण मैं मांस नहीं खाता ।"

इस पर पादरी जानसन हो-हो कर के हँसने लगे । उन्होंने कहा— "आप प्राणियों पर दया की बात करते हैं । परन्तु सारे बंगाल में कितनी जीवहिंसा होती है । पालतू जानवरों पर कितना निर्दय व्यवहार किया जाता है, यह भी आप देखते हैं ?"

"यह भी देखता हूँ और यूरोप के लोग अपने संस्कारों में स्वयं कितने निर्दय और क्रूर हैं, यह भी मैं देखता हूँ । मेरे बहुत से मित्र बांधव मांस खाते हैं, परन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से मांसाहार को पाशविक कर्म समझता हूँ ।

→

"इसी से मैं आप से सहानुभूति रखती हूँ राय महाशय, अन्यत्र मैं भी आप ही की भाँति एक कुलीन ब्राह्मण की बेटी हूँ।' सुमदा ने कहा।

'सो तुम अभी तक ब्राह्मण की बेटी हो? अब तुम मेरी बेटी बन चुकी हो और शीघ्र ही प्रभु ईसामसीह की शरण में आओगी।" पादरी ने कहा।

परन्तु मेरे संस्कार ब्राह्मण के हैं फादर, प्रभु ईसामसीह की मैं भक्त हूँ। परन्तु आपकी शरण में आ कर भी मैं उसी प्रकार ब्राह्मण हूँ जिस प्रकार कर्नल अंग्रेज हैं।

ओह, अब तो यही देखना बाकी रह गया कि यह कुछ अच्छी बात भी है या नहीं' कर्नल ने तीखी नजर से राममोहन की ओर देखते हुए कहा।

राममोहन राय ने कहा—"जहाँ तक संस्कार का प्रश्न है मैं इस संसार की बहुत अच्छी बात समझता हूँ कर्नल!

'क्या? आप तो सदा ही यह कहा करते हैं कि मैं जन्म से ब्राह्मण अवश्य हूँ पर सभी को समान समझता हूँ' पादरी ने कहा।

'बेशक मेरा अभिप्राय यह है कि मैं आभिजात्य को महत्त्व नहीं देता राममोहन ने गम्भीरता से कहा।

'तो मिस सुमदा का अभिप्राय शायद आभिजात्य की श्रेष्ठता से नहीं है।

'नहीं फादर, तनिक भी नहीं। मैं तो केवल संस्कार ही तक सीमित हूँ। आभिजात्य की भावना मेरे मन में होती तो मैं आप के साथ बैठ कर कैसे खा-पी सकती थी।

तुम बहुत अच्छी लड़की हो मेरी प्यारी सुमदा। खैर, अब चूँकि कर्नल मुहिम पर बर्मा जा रहे हैं इसलिए उनके मंगल के लिए एक-एक जाम पीना चाहिए, पादरी ने प्रसंग बदलते हुए कहा।

"अवश्य, परन्तु मैं केवल पानी ही पीऊँगा" राममोहन ने कहा।

"और मैं भी", सुखदा ने अपने और राममोहन के गिलासों में पानी भरते हुए कहा।

कर्नल मैकडानल्ड को यह अच्छा नहीं लगा। वह चुपचाप बैठा रहा। पादरी जानसन ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"क्या बर्मा में हमारी स्थिति बहुत नाजुक है कर्नल?"

"बहुत। हमारी सेना को वहाँ बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। वहाँ की नम आबोहवा और मलेरिया का सामना करना हमारे लिए कठिन पड़ रहा है। हम तो महान से महान पर कब्जा किए बैठे हैं। परन्तु अब बर्मा में वहाँ हमारी फौज एक प्रकार से बेबस हो गई है। हम चारों ओर से पानी से घिर गए हैं। इधर बर्मा का बहादुर सेनापति बन्दुला बंगाल पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है।"

"क्या बर्मा की लड़ाई हमारे लिए बहुत आवश्यक थी?"

"आवश्यक नहीं, अनिवार्य थी पादरी। इस समय ऊपर से तो हमारा शासन और दबदबा बड़ा शानदार दीख रहा है। रामेश्वर से दिल्ली तक सभी मुख्य नगरों में अंग्रेजी सेना की छावनियाँ छाई हुई हैं और ऐसा मालूम होता है कि अब ब्रिटिश हुकूमत का हिलाना आसान नहीं है। छोटी-सी बड़ी-छोटी रियासतें हमारे साथ सबसिडियरी सन्धि में बँधी हैं। [illegible] ने योजना स्वीकार कर ली है। राजपूताने के सिर पर हमारा रौब जमा है। इसलिए अजमेर का अलग प्रान्त बना कर इस पर हमारा सीधा शासन हो गया है। लार्ड हेस्टिंग्स बड़े भाग्यशाली थे। उन्हें चार एक-से-एक सहायक मिल गए थे जिनमें से प्रत्येक सफल शासक होने की क्षमता रखता था। माउंट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन महान शासक होने के अतिरिक्त इतिहास लेखक भी है।

सर चार्ल्स मेटकाफ ने दिल्ली की हुकूमत पर गहरा पदचिन्ह छोड़ा है। सर जान मालकम और सर टामस मनरो जसे शासकों की सहायता के बिना लार्ड हेस्टिंग्स बंगाल और मद्रास की गुत्थी नहीं सुलझा सकते थे। अब बजाहिर शान्ति की चोटी पर हमारा झंडा अवश्य फहरा रहा है परन्तु भीतरी दृश्य नाजुक है।

क्या बहुत नाजुक कर्नल ?

'उसे नाजुक ही कहा जा सकता है फादर भारत में हमारी संख्या अभी भी बहुत कम है। इस कमी को हम अभी तक उस मित्र भावना से पूरा कर सकते थे जिसे हम न्याय बुद्धि और सम-व्यवहार से प्राप्त करते। वह मित्र भावना हमें आक्रमणों से बचा सकती थी। परन्तु इस समय वह मित्र भावना हमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही है। हमारे चारों ओर गोल-माल मच रही है।

तरुण राममोहन राय थोड़े उत्तेजित होकर बोले—"निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण सच्चाई आप प्रकट कर रहे हैं कर्नल। अंग्रेजों को अब तक युद्धों में जो छोटी छोटी सफलताएँ प्राप्त हुई हैं उन्होंने राजा लोगों के हृदय में उनके प्रति शत्रुता के भाव उत्पन्न कर दिए हैं।"

'यही बात है राय महाशय हमने अपने आस-पास की रियासतों से व्यर्थ की छेड़छाड़ करके जो विरोध और षड्यन्त्र का वातावरण पैदा कर लिया है केवल हमारी शक्ति की डाह से उससे आधा भी पैदा न हो पाता। और अब इस बात की शंका के पर्याप्त कारण हैं कि अब कभी हम किसी ऐसे शत्रु से उलझे होंगे जिसको दबाने के लिए हमें अपनी अधिकतर सेनाएं काम में लानी पड़ें तो ये सब रियासतें एक होकर हमारे विरोध में खड़ी हो सकती हैं।

"यह तो आने वाले तूफान का एक भयंकर चित्र तुमने खींच दिया कर्नल पादरी जानसन ने माथे पर बल डालते हुए कहा—

"ईमूमसीह कृपा करें, और भारत अनन्त मास तक उसकी छत्रछाया में रहे।'

कर्नल ने अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए कहा—'अब हमें सबसे प्रथम बंगाल की सीमा को सुदृढ़ बनाना है। बर्मा के राजा अमोम्प्रा व उत्तराधिकारियों ने मनीपुर और आसाम पर कब्जा कर लिया था। इस से बर्मा की सीमा बंगाल की सीमा से मिल गई थी। परन्तु हम कैसे आसाम और मनीपुर का दूसरा के हाथों देख सकते हैं। परन्तु वे यहीं तक संतुष्ट नहीं रहे—व चटगाँव ढाका मुर्शिदाबाद और कासिम बाजार को भी हम से माँगने लगे।"

राममोहन राय ने कनखी नजर से कर्नल की ओर देख कर कहा—"सचिन इसका कारण तो यही प्रतीत होता है कि बर्मा के सब भगोड़े बंगाल के इन्हीं इलाकों में अधिक हैं। और वे समय-समय पर बर्मा में घुस कर छापे मारते हैं और आ छिपते हैं। बर्मा के ये शत्रु भारत की सीमा में सुरक्षित हैं।

'तो हम क्या करें? शरणागतों को वश हम शत्रु के सुपुर्द कर दें। हमें विवश हो बर्मा से युद्ध घोषणा कर देनी पड़ी। और अब यहाँ हमारी सेना घोर संकट में पड़ गई है। उस तत्काल ही सहायता की आवश्यकता है।

"इसी से शायद आप लोगों ने बैरकपुर में वह भयानक काण्ड कर डाला," राममोहन राय ने तनिक दृढ़ स्वर में कहा।

'वह तथाकथित सिपाही-विद्रोह था राय महाशय और उस दबाना हमारा कर्तव्य था।"

"परन्तु कर्नल, उसे 'बम्ब ब्लास्ट' की आवाजों से रोका जा सकता है।

'आप कैसे यह कहने की जुर्रत करते हैं मिस्टर, राय,' कर्नल ने क्रोध से लाल हो कर कहा ।

परन्तु राममोहन ने सहज स्वर में कहा— आप ही कैसे उसे सिपाही विद्रोह कह रहे हैं ?

स्पष्ट है कि सिपाहियों ने अपने अफ़सरों की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया था ।

"कर्नल, आप अच्छी तरह जानते हैं कि इस रेजीमेंट में ऊँचे वर्गों के हिन्दू थे । अभी तक देश में सुधार की कोई चर्चा ही नहीं है । कुलीन लोग अधिकतर रूढ़िवादी हैं । अधिकतर कुलीन हिन्दू यह विश्वास करते हैं कि समुद्र यात्रा करने से उनका धर्म भ्रष्ट हो जायगा । रंगून जाने के लिए उन्हें जहाज पर चढ़ना पड़ता । जब सिपाहियों को नौकर रखा गया था तब यह बात स्पष्ट नहीं की गई थी कि उन्हें समुद्र यात्रा भी करनी पड़ेगी । इसके अतिरिक्त उनकी भी शिकायतें हैं । उनकी तनख्वाह बहुत कम है । उन्हें चार से साढ़े छ रुपए माहवार में गुजारा करना पड़ता है । क्या आप समझते हैं कर्नल, कि एक आदमी की जान की क़ीमत चार रुपए काफ़ी है ? फिर उनकी वर्दी जूते बहुत खराब हो गए थे । उन्हें जब एक स्थान से दूसरी जगह जाना पड़ता है उन्हें खच्चर और घोड़ों का बन्दोबस्त खुद करना पड़ता है । सेना के अफसर उन्हें कोई मदद नहीं देते ।

लेकिन उन्होंने बर्मा जाने से क़तई इन्कार कर दिया था । यह भयकर सैनिक अपराध है राय महाशय ।

'इन्कार उन्होंने नहीं किया । उन्होंने विनीत प्रार्थनापत्र अपने उच्च अफसर की सेवा में भेजा था कि यदि उन्हें बर्मा भेजा ही जा रहा है तो उन्हें अलग भत्ता दिया जाय । जैसे बैलगाड़ी वालों तथा सफरमैना के दूसरे कर्मचारियों को दिया जाता है ।"

"तीस अक्तूबर को जब इस रेजीमेंट को परेड पर आने का हुक्म दिया गया तो वे अपने कुणबे साथ नहीं लाये, यह उनका अक्षम्य अपराध था और इसकी रिपोर्ट बाक़ायदा कमांडर-इन चीफ़ सर एडवर्ड पैजेट को भेज दी गई। और उनसे आदेश माँगा गया।"

'वे कुणबे कैसे ला सकते थे। वे दोसीदा हो गए थे। बाहर ले जाने के योग्य न थे। यह कोई ऐसा गम्भीर आरोप न था। आप अच्छी तरह जानते हैं कर्नल कि उन ग़रीब सिपाहियों के साथ इतनी सी बात पर क्या सुलूक किया गया।"

'ज़रूर जानता हूँ। वह रेजीमेंट मेरी ही थी। और मामले की रिपोर्ट कमांडर-इन-चीफ़ को दी जानी आवश्यक थी। उनके साथ वही सुलूक किया गया जो उचित था।"

"यानी जब वे परेड में आए तो उन्हें दो गोरा रेजीमेंट, एक तोपख़ाने की कोर और गवर्नर जेमरल के अंगरक्षक घुड़सवारों की टुकड़ी में घेर लिया।

बेशक, और उन्हें हुक्म दिया गया कि या तो सीधी तरह बर्मा चलो या हथियार रख दो।

और जब उन ग़रीबों ने अपने आवेदनपत्र की बात कही तो एकदम तोपों के मुँह खोल दिये गये। उन बेचारे बेगुनाह सिपाहियों पर गोलों की बौछार होने लगी, बहुत से वहीं मर गए, बहुत से नदी की ओर भाग, उनमें बहुत से डूब कर मर गए। यह उन लोगों को आपने इनाम दिया जो केवल चार रुपये माहवार पर आप के लिए जान देने को तैयार थे।

'जी हाँ, और अब यह रेजीमेंट तोड़ दी गई है। और जो लोग बच कर भाग गये हैं उनका कोर्ट मार्शल किया जायगा।'

"आप कैसे यह कहने की जुर्रत करते हैं मिस्टर, राय," कर्नल ने क्रोध से लाल हो कर कहा ।

परन्तु राममोहन ने सहज स्वर में कहा— आप ही कैसे उसे सिपाही विद्रोह कह रहे हैं ?

'स्पष्ट है कि सिपाहियों ने अपने अफ़सरों की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया था ।

'कर्नल आप अच्छी तरह जानते हैं कि इस रेजीमेंट में ऊचे दर्जे के हिन्दू थे । अभी तक देश में सुधार की कोई चर्चा ही नहीं है । कुलीन लोग अधिकतर रूढ़िवादी हैं । अधिकतर कुलीन हिन्दू यह विश्वास करते हैं कि समुद्र यात्रा करने से उनका धर्म भ्रष्ट हो जायगा । रंगून आने के लिए उन्हें जहाज पर चढ़ना पड़ता । जब सिपाहियों को नौकर रखा गया था तब यह बात स्पष्ट नहीं की गई थी कि उन्हें समुद्र यात्रा भी करनी पड़गी । इसके अतिरिक्त उनकी भी शिकायतें हैं । उनकी तनख्वाह बहुत कम है । उन्हें चार से साढ़े छ रुपए माहवार में गुजारा करना पड़ता है । क्या आप समझते हैं कर्नल कि एक आदमी की जान की क़ीमत चार रुपए काफी है ? फिर उनकी वर्दी जुराबें बहुत खराब हो गए थे । उन्हें जब एक स्थान से दूसरी जगह जाना पड़ता है उन्हें छप्पर और घोड़ा का बन्दोबस्त खुद करना पड़ता है । सेना के अफसर उन्हें कोई मदद नहीं देते ।

'लेकिन उन्होंने बर्मा जाने से क़तई इन्कार कर दिया था । यह भयंकर सैनिक अपराध है राय महाशय ।

इन्कार उन्होंने नहीं किया । उन्होंने विनीत प्रार्थनापत्र अपने उच्च अफसर की सेवा में भेजा था कि यदि उन्हें बर्मा भेजा ही जा रहा है तो उन्हें अलग भत्ता दिया जाय । जैसे बैसगाड़ी वालों तथा सफरमैना व दूसरे कर्मचारियों को दिया जाता है ।"

'तीस अक्तूबर को जब इस रेजीमेंट को परेड पर आने का हुक्म दिया गया तो वे अपने बूगले साथ नहीं लाये, यह उनका अक्षम्य अपराध था और इसकी रिपोर्ट बाकायदा कमांडर-इन-चीफ़ सर एडवर्ड पैजेट को भेज दी गई। और उनसे आदेश माँगा गया।'

'वे बूगले कैसे ला सकते थे। वे बोसीदा हो गए थे। बाहर ले जाने के योग्य न थे। यह कोई ऐसा गम्भीर आरोप न था। आप अच्छी तरह जानते हैं कर्नल कि उन ग़रीब सिपाहियों के साथ इतनी सी बात पर क्या सुलूक किया गया।'

'ज़रूर जानता हूँ। वह रजीमेंट मेरी ही थी। और मामले की रिपोर्ट कमांडर-इन-चीफ़ को दी जानी आवश्यक थी। उनके साथ वही सुलूक किया गया जो उचित था।"

'यानी जब वे परेड में आए तो उन्हें दो गोरा रेजीमेंट एक तोपख़ाने की फ़ौज और गवर्नर जेनरल के अंगरक्षक घुड़सवारों की ट्रूप ने घेर लिया।

'बेशक, और उन्हें हुक्म दिया गया कि या तो सीधी तरह बर्मा चलो या हथियार रख दो।

और जब उन ग़रीबों ने अपना आवेदनपत्र की बात कही तो एकदम तोपों के मुँह खोल दिये गए। उन बेचारे बेगुनाह सिपाहियों पर गोलों की बौछार होने लगी, बहुत से वहीं मर गए, बहुत से नदी की ओर भागे, उनमें बहुत से डूब कर मर गए। यह उन लोगों को आपने इनाम दिया जो केवल चार रुपये माहवार पर आप के लिए जान देने को तैयार थे।"

'जी हाँ और अब यह रजीमेंट तोड़ दी गई है। और जो लोग बच कर भाग गये हैं उनका कोर्ट मार्शल किया जायगा।

"यानी उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिया जायगा। कर्नल आप किस तरह इस तरह की कार्यवाही को उचित कह सकते हैं।'

'राय महाशय आप कदाचित् दायित्व के सम्बन्ध में नहीं सोचते। जब दायित्व का प्रश्न आता है तो छोटे-छोटे व्यक्तिगत प्रश्नों से ऊपर हमें सोचना पड़ता है।'

आप मुझे क्षमा करें कर्नल मैं यह कहना चाहता हूँ कि आपको कुछ और बातें भी सोचनी चाहिए?

'कौन-सी और बातें?

कि इन बेचारे सिपाहियों के भी कुछ विचार हो सकते हैं और उन्हें चार रुपये माहवार से अधिक तलब माँगने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त उनसे मिल कर उन्हें समझा-बुझा कर शान्त करने की भी आवश्यकता थी। पर अफसोस है सर पैजेट ने ऐसा नहीं किया। वे शायद यह समझते हैं कि अंग्रेज हुक्मत करने के लिए और हिन्दुस्तानी हुक्म मानने के लिए पैदा हुए हैं।'

"एक हद तक यह बात सच भी है मिस्टर राय।

अफसोस है कि आप ऐसा समझते हैं। आपको याद रखना चाहिए, कि आपने इन्हीं हिन्दुस्तानी सिपाहियों की बदौलत हिन्दुस्तान को जीता है। राशन कम होने पर उन्होंने मांड पीकर दिन काटे और भात अंग्रेज सिपाहियों को दिया। आप जानते हैं कि हिन्दुस्तानी सिपाही शराब नहीं पीते उनसे काम लेना बहुत आसान है। इतने कम वेतन पर आपको कहीं भी ऐसे अच्छे सिपाही नहीं मिल सकते।"

'लेकिन उन्होंने विद्रोह किया था।"

आपका ऐसा कहना सरासर अन्याय है। क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि उनको कत्ल करने के बाद जब उनकी बंदूकें देखी गईं, तो वे खाली थीं। उनका विद्रोह करने का कतई इरादा न था।"

"हम उन्हें तनख्वाह देते हैं। हमारे प्रति नमकहलाल होना उनका कर्तव्य है। फिर, सेना में डिसिप्लिन का मूल्य बहुत है।"

"चार रुपया माहवार कोई तनख्वाह नहीं है कर्नल। और नमकहलाली की बात महज हिमाकत है। एक दिन वे यह बात समझ लेंगे और तब शायद आप उन्हें इस तरह आसानी से गोलियों और गोलों से न भून सकेंगे।

राममोहन राय बहुत उत्तेजित हो गए थे। उनके इस वक्तव्य से कर्नल मेकडानल्ड क्रोध से लाल हो गया। वह एकदम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा— आप मेरा अपमान कर रहे हैं। मिस्टर राय आप माफी माँगिए।

"मैंने एक सच बात कही है कर्नल और अब मैं जाता हूँ।"

वे उठ कर चल दिए। पादरी ने कर्नल का हाथ पकड़ कर कहा— 'बैठो बेटे बात तो उसने सच ही कही है।

आप भी ऐसा ही समझते हैं फादर?"

"कर्नल क्या तुमने अभी कुछ देर पूर्व नहीं कहा था—कि उस तरह की सख्तियां किस कदर खतरनाक नतीजे ला सकती हैं। क्या इस तरह हिन्दुस्तान के एक-एक आदमी के दिल में अपने लिए घृणा के भाव पैदा करना हमारे लिए अच्छा होगा?"

कर्नल बैठ कर चुरुट सुलगाने लगा। इसी बीच सुमता चुपचाप वहाँ से उठ कर चली गई। उसका मुँह भरे हुए बादलों के समान गम्भीर हो रहा था।

★

शुभदा जो इस प्रकार उठ कर चली गई तो कर्नल मकडानल्ड स्थिर नहीं रह सका। वह उठ कर उसके पीछे-पीछे चला गया। दूसरे कमरे में जाकर उसने कोमल स्वर में कहा—

'क्या तुम्हें बुरा लगा शुभदा !'

'बुरा क्यों न लगेगा भला। क्या तुम्हारी बातचीत से यह प्रकट नहीं होता कि तुम हम भारतीयों को तुच्छ समझते हो और घृणा करते हो।

'तुम जानती हो शुभदा म तुम्हें प्यार करता हूँ।'

अजीब बात है तुम प्यार की बातें करते हो। कहीं घृणा और प्यार भी एक साथ हो सकते हैं ?

किन्तु शुभदा भारतीय कितने पतित होते हैं। इसका एक जीता-जागता उदाहरण तो वह भयानक व्यवहार है, जो उन्होंने तुम जैसी स्त्री क साथ किया। क्या तुम्हारे साथ कुछ कम अत्याचार हुआ ?

अत्याचार ही क्या जातीय श्रेष्ठता का मापदण्ड है। अंग्रेज यूरोप में और यहाँ भी—क्या कम अत्याचार करते हैं। भारतीय तो रूढ़ि के बन्धन में बंधे हैं। परन्तु आप लोग तो नई दुनिया के आदमी हैं। आप तो अपने स्वार्थों के लिए क्रूर अत्याचार करते हैं जो रूढ़िवादियों की अपेक्षा कहीं अधिक खराब है। क्या मैं नहीं देखती कि अंग्रेज कितने निर्मम, क्रूर और स्वार्थी हैं।

"परन्तु हम जातीयता के नाम पर जूझ मरने वाले आदमी हैं शुभदा।

'बस, तो यही समझ लो कि हिन्दू जाति के दोष और गुण मुझे ज्ञात हैं। दोष उसमें ऊपर से लादे हुए हैं और गुण उसके परम्परा के संस्कारों से हैं।'

'परन्तु वह तरुण बंगाली तो सीधा वार करता है।'

'इसलिए कि वह सच्चा है। उसे अपनी जातीयहीनता का ज्ञान है और उसे वह सहन नहीं कर सकता। वह उन दोषों को दूर करने पर तुला हुआ है।

'ओह, तुम तो उसकी जरूरत से ज्यादा तारीफ कर रही हो।''

'मैं समझती हूँ कि उसकी पूरी योग्यता मुझ पर प्रकट नहीं है। उसकी बातें मैंने सुनी हैं, वह एक अवतारी पुरुष है।

'खैर, मैं देखता हूँ कि तुम क्रिश्चियन सोहबत में रहने और अंग्रेजी की उच्च शिक्षा पाने पर भी अन्ततः हिन्दू ही हो।'

'हिन्दू ही क्यों, हिन्दुस्तानी भी हूँ। और यह बात मैंने जितनी अब अंग्रेजों के संसर्ग में आकर सीखी है, उतनी हिन्दू संस्कारों में नहीं सीखी।

तब तो तुम्हें अंग्रेजों का कृतज्ञ होना चाहिए ?

'कृतज्ञ तो मैं हूँ ही, खास कर तुम्हारे प्रति। तुमने एक वीर पुरुष की भाँति मेरे जीवन की रक्षा ही नहीं की—मेरे जीवन को आलोक से भर दिया। अब मैं अपने जीवन को भली-भाँति देख और समझ सकती हूँ।

''लेकिन तुम तो मुझी से नाराज हो।

''और किससे नाराज होऊँ भला ? तुम्हारा कोई दोष मैं सहन नहीं कर सकती। तुम मुझ प्यार करने की बात कहते हो—प्यार मैं भी तुम्हें करती हूँ। शायद तुम से अधिक। लेकिन इतना अवश्य

है कि तुम्हें मैं वैसा ही देव पुरुष देखना चाहती हूँ—जैसा तुम मेरी प्राण रक्षा के समय थे।"

"परन्तु शुभदा कुछ कर्तव्य के भार सिर पर आ जाते हैं।

'क्या वे ऐसे भी हो सकते हैं जो मनुष्य को नीचे गिरा देते हैं ?"

'यह तो मैं नहीं कह सकता।"

'तो तुम्हें सोचना होगा—ऐसा कोई काम कर्तव्य हो ही नहीं सकता जो मनुष्य की आत्मा की पुकार से परे हो।'

"मसलन नौकरी, नौकरी में तो स्वामी की आज्ञापालन ही कर्तव्य हो जाता है।"

'यह कर्तव्यपालन की तुम्हारी अंग्रेजी व्याख्या मैं नहीं स्वीकार करती। मैं तो उसी काम को कर्तव्य समझती हूँ—जो न्यायोचित और मानवोचित हो।

'ओह सुभद्रा तुम सेना में भरती होने योग्य नहीं हो।"

'ईश्वर का धन्यवाद है कि मैं उसकी उम्मीदवार नहीं हूँ।"

'खैर, तो तुम चाहती हो कि मैं बर्मा न जाऊँ ?"

'जरूर जाओ। जाना तुम्हारा कर्तव्य है, और वहाँ जाकर न्यायोचित और मानवोचित काम करना भी तुम्हारा कर्तव्य है।'

'खैर मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ सुभद्रा देवी। तुम्हारी बातें मैंने धरोहर के रूप में अपने हृदय में धारण कर ली हैं किन्तु अब मैं तुमसे कुछ निवेदन करूँ ?"

"कहो।"

मैं चाहता हू कि बर्मा फ्रन्ट पर जाने से पहले ही हमारा विवाह हो जाय और वहाँ से लौटने पर आगामी वसन्त में हम लोग इंगलैण्ड चलें।"

"मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहती, तुम जैसा ठीक समझो करो। मैंने तो अपने आपको तुम्हें समर्पित कर दिया है। अब और मैं क्या कहूँ ?

'तुम्हारी यह बात कितनी प्यारी है सुमदा मैं कैसे कहूँ। किसी अंग्रेज रमणी के मुँह से मैं ऐसे शब्द नहीं सुन सकता।

"तुम्हें शायद ये शब्द नये और अनोखे से प्रतीत होंगे। पर यह तो हमारा—हम हिन्दू स्त्रियों का कुलाचार है। क्रिश्चियन संसार में पलने पर भी मैं यह नहीं त्याग सकती। हम भारतीय घरों में कर्तव्य-पथ पर चुपचाप चलती रहती हैं कभी थकती नहीं। अधिकारों की लड़ाई हमें सिखाई जाती ही नहीं जैसा कि मैं यूरोपियन स्त्रियों में देखती हूँ।'

"मैं समझता हूँ इससे स्त्री पुरुष के अधिक निकट आती है।'

'निकट क्या ? उनमें अभिन्नता उत्पन्न हो जाती है और वे दोनों एक हो जाते हैं। किन्तु तभी—जब पुरुष भी स्त्री के प्रति केवल कर्तव्य का ही पालन कर—अधिकारों का गर्व और स्वत्व त्याग दे।

' ओह, मेरी प्यारी सुमदा तुमने ये सब बातें कहाँ सीखी हैं ?"

"सीखी नहीं हैं, ये बातें हमारे रक्त में घुली-मिली हैं। हमारा स्वभाव बन गई हैं।'

"तो मैं तुम से सीखूँगा, और कोशिश करूँगा—कि तुम्हारा योग्य पति बनूँ।"

' खैर, अभी तो तुम योग्य कर्नल एक सेना का योग्य अफसर अपने को प्रमाणित करो। कर्तव्य को ठीक समझो, और उसी की राह पर चलो।'

'मैं तुम्हें शिकायत का मौका न दूँगा सुमना। तो यह तय रहा कि इसी सप्ताह में हमारा ब्याह हो।

'जैसा तुम ठीक समझो।

'तो मैं पादर से यह बात कह दूँ ?

'कह दो।'

'तुम मुझ से और कुछ कहना चाहती हो ?"

'हाँ तुम अपनी तन्दुरुस्ती का ध्यान रखना।'

'और तुम मुझे हर दूसरे दिन पत्र लिखना।'

'मैं लिखूँगी।

मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगा।

कर्नल मेकडानल्ड ने सुमना का हाथ अपने हाथों में लेकर दबाया और कहा—'विदा मेरी प्यारी सुमना।'

'विदा तुम्हारी यात्रा शुभ हो।

वह भीतर चली गई। कर्नल बाहर आ पादरी से आवश्यक बातें करने लगा।

★

८

सर हाइड ईस्ट उन दिनों कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस थे। बड़े सहृदय और उदार व्यक्ति थे। भारत के प्रति इन्हें सहानुभूति थी। राममोहन राय के ये अनन्य मित्र थे। इस समय अंग्रेज सरकार ने राममोहन राय को राजा की उपाधि दी थी। उसी के उपलक्ष्य में उन्होंने एक छोटे से प्रीतिभोज का आयोजन अपने घर पर किया था। उसमें कलकत्ते के कुछ सम्भ्रान्त पुरुषों को आमन्त्रित

किया गया था। आमन्त्रित व्यक्तियों में एक डेविड हेमर भी थे। ये कलकत्ते में घड़ियों का व्यापार करते थे और राममोहन राय के घनिष्ट मित्र थे। तीसरे थे पण्डित शिवप्रसाद शर्मा, जो राममोहन राय के पत्र ब्राह्मोसमाज मैगजीन के सम्पादक थे। चौथे थे, राजा द्वारिकानाथ ठाकुर। पाँचवें थे प्रसन्नकुमार ठाकुर। छठे थे देवेन्द्रकुमार ठाकुर। ये सब राममोहन राय के समर्थक साथी और सहायक थे। इनके अतिरिक्त कुछ और भी धनीमानी कलकत्ते के प्रतिष्ठित पुरुष थे। समारोह में राममोहन राय की उनके सुधार सम्बन्धी कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की गई। और उन्हें राजा होने के उपलक्ष्य में बधाइयाँ दी गई। इसके बाद कुछ आवश्यक बातें प्रारम्भ हुई। राजा राममोहनराय ने सबको धन्यवाद देते हुए कहा– आप सब यदि सचमुच ही मेरे प्रति इतना प्रेम और सम्मान भाव रखते हैं, तो इस समय आपने प्रकट किया है, तो मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आप कलकत्ते में एक "हिन्दू महाविद्यालय' की स्थापना करें, जिसमें हिन्दू युवकों को आधुनिक शिक्षा दी जाय। हमारे देश में शिक्षा प्रचार की व्यवस्था पहले ही से है। देश भर में फारसी के मदरसे खुले हुए हैं। धनीमानी लोग घरों में मौलवी रख कर बच्चों को फारसी पढ़ाते हैं। फिर देश में संस्कृत टोल और पाठशालाएँ भी हैं। परन्तु देश में प्रायः ऐसा प्रचलन है कि इन प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ कर युवक व्यावहारिक कामों में लग जाते हैं। कुछ उच्च विद्यालय भी है जिनमें न्याय, वेदान्त, आयुर्वेद, साहित्य और दर्शन पढ़ाये जाते हैं। परन्तु भारत की यह शिक्षा प्रणाली जीर्णशीर्ण गतानुगतिक और निष्प्राण है। जो पुरानी बातें लिखी हुई हैं, उन्हें लोग पढ़ाते जा रहे हैं। नई बातें सोचने अथवा नए ज्ञान को संगठित करने की ओर किसी का ध्यान नहीं है। कम्पनी राज्य की जनता को शिक्षित करने का दायित्व उठाना नहीं चाहती

न जनता ही इस विषय में जागरूक है। फिर भी अंग्रेजों के भारत में आ जाने से अंग्रेजी भाषा का विकास हुआ है। और इस काम में सहायक कम्पनी के कर्मचारी हैं, या ईसाई धर्म प्रचारक। कम्पनी के कर्मचारी तो भारतीयों को इसलिए अंग्रेजी सिखाना चाहते हैं, कि उनके काम में आसानी हो। और ईसाई धर्म प्रचारक इसलिए कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति को आसानी से क्रिस्तान बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय अमीर यह समझते हैं कि अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबुओं का अंग्रेज अधिक सम्मान करते हैं।

इस पर प्रसन्नकुमार ठाकुर ने कहा— परन्तु कम्पनी का शासन इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना नहीं चाहता। इसका कारण मैं तो यह समझता हूँ कि अंग्रेज भारत में अपने राज्य की जड़ जमाना चाहते हैं, अपने देश की सभ्यता फैलाना नहीं।

'आप ठीक कहते हैं ठाकुर महोदय वे अभी तक यह समझ रहे हैं कि हिन्दू और मुसलमान प्रजा पर राज्य उन्हीं के कानूनों के अनुसार चलाया जाना चाहिए।' राजा राममोहन राय ने अपना वक्तव्य जारी रखते हुए कहा— सबसे पहला कदम कम्पनी सरकार ने शिक्षा के सम्बन्ध में वारेन हेस्टिंग्स के समय में उठाया, जब कि मौलवी मजीउद्दीन की नियुक्ति में कलकत्ते में एक मदरसा खोला गया था। इसमें चालीस मुस्लिम छात्र धार्मिक शिक्षा पाते थे। यह सन् १७८१ की बात है। इसके दस बरस बाद बनारस के रेजिडेन्ट जानथन डंकन के अनुरोध से लार्ड कार्नवालिस ने बनारस में हिन्दुओं के लिए भी एक संस्कृत कालेज की स्थापना की थी। परन्तु भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा देने की सलाह पहले-पहल सर चार्ल्स ग्रान्ट ने बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को दी थी। परन्तु उस समय इस पर विचार नहीं किया गया। इधर सिरामपुर मिशन के धर्म प्रचारक अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में रहे हैं।"

इस पर राजा द्वारिकानाथ ठाकुर ने कहा—"इसका तो हाथों हाथ उन्हें लाभ मिल रहा है, महामेधावी पण्डित रामचन्द्र क्रिश्चियन हो गए, सुप्रसिद्ध कवियित्री तारुदत्त क्रिस्तान हो गई। उनके पिता गोविन्दचन्द्र दत्त भी क्रिस्तान हो गए थे, बंगाल में अंग्रेजी के जो प्रथम विद्वान् कहे जाते हैं वे साहबचन्द्र बनर्जी भी क्रिस्तान हो गए, माइकेल मधुसूदन के क्रिस्तान होने की बात तो प्रसिद्ध ही है।

प्रसन्नकुमार ठाकुर ने कहा "सिरामपुर के मिशनरी लोग अपना मौखिक उपदेश तो देते ही हैं, लिखित साहित्य भी हिन्दुओं में बखेर रहे हैं। इसी से वे चाहते हैं कि सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार हो इसी से उन्होंने मिशनरी स्कूल खोले हैं, क्योंकि कम्पनी राज्य में धर्म-विश्वास पर सीधा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता पर स्कूलों में उन्हें बीसियों प्रकार से प्रभावित किया जा सकता है। इसी से सिरामपुर की मिशनरियों ने केवल छापाखाना ही नहीं खोला है कागज का कारखाना भी खोला है, और उन्होंने बाइबिल का अनुवाद भारत की छब्बीस भाषाओं में प्रकाशित किया है। इन अनुवादों का उपयोग तभी हो सकता है जब देशी भाषाओं के स्कूल खुलें और खास ढंग की पुस्तकें तैयार की जाएँ।

"बेशक, तो मैं यह कह रहा था कि कलकत्ते के मदरसे और बनारस के संस्कृत कालेज के बाद बहुत दिन तक कम्पनी सरकार ने कोई कदम शिक्षा के सम्बन्ध में नहीं उठाया। सन् १८०१ में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना अवश्य हुई पर वह कम्पनी के नए अफसरों को देशभाषा सिखाने के लिए। इस प्रकार आम प्रजा की शिक्षा केवल मिशनरियों ही के हाथ में अभी तक बनी है, अब मिशनरियों ने कलकत्ता में बिशेप कालेज खोला है। इसका भी उद्देश्य मिशनरियों का प्रचार करना है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता में अंग्रेजी शिक्षा

का विस्तार हो, और उसके साथ ही साथ उन्हें हिन्दी, फारसी तथा दूसरे आवश्यक विषय भूगोल, गणित, इतिहास आदि पढ़ाए जाएं। इसलिए धर्म निरपेक्ष शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जाय। खेद है कि कम्पनी सरकार इस मामले में उदासीन है। परन्तु हम उदासीन रहना नहीं चाहते। हम अगला कदम स्वयं उठाना चाहते हैं। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि कलकत्ते में एक हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जाय।

देवेन्द्रनाथ ने कहा— 'इस शुभ काम के लिए मैं दस हजार रुपए समर्पित करता हूँ। प्रसन्नकुमार ठाकुर ने कहा— 'दस हजार रुपए मैं भी देता हूँ।" राजा द्वारिकानाथ ठाकुर ने कहा— 'दस हजार रुपए मैं देता हूँ।' राधाकान्त देव ने कहा—"दस हजार रुपए मैं भी देने को तैयार हूँ परन्तु मैं राय महाशय का सहयोग नहीं कर सकता।"

देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा— 'राय महाशय के विरुद्ध आपको क्या आपत्ति है ?"

'आपत्ति बहुत है। वे मुसलमानों और अंग्रेजों के साथ खान पान करते हैं। वे नैष्ठिक ब्राह्मण हैं। परन्तु उन्होंने ब्राह्मसमाज की स्थापना कर सब नीच-ऊँच को एक कर दिया है। वे हिन्दू समाज को भ्रष्ट कर रहे हैं। मूर्तिपूजा के विरोधी हैं।

इस पर डेविड हेयर ने कहा— 'महाशय यह तो बड़ी विचित्र बात है। राय महाशय यदि अंग्रेजों तथा मुसलमानों के साथ खान पान करते हैं और उन्होंने जो ब्राह्मो समाज की स्थापना भी है इससे तो उनकी उदारता ही प्रकट है। क्या आप अब भी बंगाल में पुरानी रूढ़ि को प्रचलित करना पसन्द करते हैं ?"

"मैं तो यही चाहता हूँ कि जो हिन्दू महाविद्यालय खोला जाय उसमें ब्राह्मो समाज की शिक्षा नहीं, हिन्दू सिद्धान्तों की ही शिक्षा दं जाय। तभी मैं और मेरे दूसरे मित्र इसमें सम्मिलित हैं नहीं तो नहीं।

राजा राममोहन राय ने शान्त स्वर में कहा—'इस विद्यालय कं स्थापना का उद्देश्य हिन्दू तरुणों के हृदयों में नए ज्ञान का दीप जलान है। अत उसमें सभी उदारचेता महानुभावों को सम्मिलित होन आवश्यक है। मेरे मित्र राधाकान्त देव को इस शुभ कार्य में यो देने में केवल यही आपत्ति है कि मै उसमें न रहूँ तो मैं सहर्ष अप आपको इससे पृथक कर सता हूँ। आप सब लोग मिलकर यह शु कार्य करें। इस कार्य में दस हजार रुपए मैं भी आपको अर्पित करर हूँ। ये पचास हजार रुपए जो आपने इस समय एकत्र किए है, आप इस शुभ कार्य को आरम्भ करने को यथेष्ट हैं। आपको यह भी ज्ञा हो कि सन् १८१३ में कम्पनी सरकार ने एक लाख रुपया, प्रति व शिक्षा के काम में खर्च करना तय किया था परन्तु इस अनुदान की रक म कलकत्ता बुक सोसाइटी और कलकत्ता स्कूल सोसाइटी को दे दी जा रही है। सरकार न एक कालेज कलकत्ते में और एक दिल्ली में स्थापि किया है। जहाँ भारत की तीन भाषाएँ संस्कृत अरबी और फार पढ़ाई जाती ह पर मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जब तक अंग्रेजी। शिक्षा इन केन्द्रों में नहीं दी जायगी—कुछ लाभ नहीं होगा। ं एक पत्र लार्ड राम हमर्स्ट को भी लिखा था—कि इंगलैण्ड के लो नहीं चाहते कि भारत में ज्ञान का प्रचार बढ़े। अन्यथा व अंग्रेजी बदले भारतीय भाषाओं का पृष्ठपोषण क्यों करते। परन्तु म निश्चि रूप स कह सकता हूँ कि भारत की भलाई इसी में है कि उन्हें विज्ञान, शिक्षा, इतिहास, राजनीति और पाश्चात्य शास्त्रों की शिक्षा अंग्रेजी भाषा के साथ ही दी जाय।"

सर हाइड ईस्ट अब तक चुपचाप बैठे सबके वक्तव्य सुन रहे थे अब उन्होंने उठ कर कहा—"सज्जनो, इस समय आपने जिस न अनुष्ठान का सूत्रपात किया है उसके लिए मैं आपका अभिनन्द करता हूँ। परन्तु मेरा सबसे अधिक अभिनन्दन राजा राममोह राय के लिए है, जिन्होंने श्री राधाकान्त देव और उनके समर्थकों विरोध से दूरदर्शितापूर्वक अपना नाम उस काम से वापस ले लिय जो उनका अपना था। राजा राममोहन राय अरबी और फारस के प्रौढ़ विद्वान् हैं तथा अंग्रेजी के भी पण्डित हैं। परन्तु उनव सारी श्रेष्ठता उस लगन से सम्बन्धित है जो उनमें भारत की जनत की भलाई और उन्नति के सम्बन्ध में है। श्री राधाकान्त देव मु क्षमा करें यदि मैं यह कहूँ कि वे इस समय भारत के एक देदीप्यमान नक्षत्र हैं तथा भारतीयों और अंग्रेजों के बीच मित्रता के सूत्र गूँथने वाले एकमात्र पुरुष हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में मैं इतना आपको बताना चाहता हूँ—कि इसका जो प्रयास इस समय बंगाल में हो रहा है, उतना भारत के दूसरे प्रान्तों में नहीं। मद्रास में टूटी-फूटी अंग्रेजी का ज्ञान बहुत से लोगों को स्वयं आप ही आप हो गया है क्योंकि वहाँ अंग्रेजी कितने ही भारतवासियों के बीच स्थानीय बोली के रूप में चलने लगी है। बम्बई में अरबी फारसी और संस्कृत का स्थान दृढ़ नहीं है। उधर के लोग देश-भाषा के पक्ष में हैं तथा देश-भाषाओं की शिक्षा के क्रम में अंग्रेजी आप से आप ही आ गई है। प्राच्य और पाश्चात्य का झगड़ा वास्तव में कलकत्ते ही में उठ खड़ा हुआ है। मेरे आदरणीय बन्धु राजा राममोहन राय सुगठित रूप में अंग्रेजी के प्रचार के लिए व्यग्र हैं, जब कि बंगाल में अभी बहुत प्राच्यवादी हैं। मैं तो समझता हूँ कि अब यह शिक्षा के क्षेत्र में प्राच्यवादियों और अंग्रेजी के समर्थकों का एक द्वन्द्व आरम्भ हो रहा है। परन्तु लार्ड विलियम बैंटिक महान

ही यह घोषणा कर चुके हैं कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा। यह बड़े ही महत्व की घोषणा है और इसका प्रभाव भारत की भावी पीढ़ी पर असाधारण पड़ेगा। आप जानते हैं कि भारत के प्रत्येक जिले में स्कूल खुलते जा रहे हैं और आशा करता हूँ कि शीघ्र ही अंग्रेजी शिक्षा सहसा इतनी लोकप्रिय हो उठेगी, कि सरकार को सरकारी तथा गैर-सरकारी स्कूली किताबों का प्रबन्ध करना कठिन हो जायगा। एक शब्द में मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह ज्ञान की अपूर्व जागृति का समय है। अब आपने जो इस समय यह कार्य आरम्भ किया है मैं चाहता हूँ कि इसका भार आप हमारे उत्साही मित्र श्री डेविड हेयर के सुपुर्द कीजिए। मैं आशा करता हूँ वे तन-मन से इस काम में लग जायेंगे।"

डेविड हेयर ने कहा— मैं तैयार हूँ।"

और हर्ष-ध्वनि के बीच उन्हें शिक्षालय का अधिष्ठाता चुन लिया गया और यह ऐतिहासिक गोष्ठी समाप्त हुई।



६

राधामोहन मजूमदार गाँव छोड़ कलकत्ते में आ बसे। अपनी जमींदारी बेच कर उन्होंने कलकत्ते में एक आलीशान मकान बनवाया और जूट का कारोबार शुरू किया। यह काम अभी-अभी बंगाल में आरम्भ हुआ था, और केवल कुछ अंग्रेज कम्पनियाँ ही यह धन्धा करती थीं। उन्होंने उनसे अपने सम्पर्क स्थापित किए, और उनके सहयोग से थोड़े ही समय में उनका व्यवसाय चमक उठा— और उन्हें काफी आय होने लगी। तीन साल तक वे एक अफसर से

अज्ञात रूप में रहे । अपनी सारी शक्ति उन्होंने अपने कारोबार में केन्द्रित कर दी । यों तो वे बड़े मिलनसार थे—परन्तु इस समय उन्होंने मिलना-जुलना या किसी सामाजिक कार्य में आना-जाना कतई छोड़ दिया था । वे जाति-बहिष्कृत कर दिए गए थे—अकारण केवल पाखण्ड के कारण । उनका एकमात्र पुत्र बचपन ही में काल-कवलित हुआ था । उनकी बालिका पुत्रवधू का सती होते-होते चिता से हरण कर लिया गया था । इन सब बातों से उनके मस्तिष्क पर गहरा आघात पहुँचा था । वे अपनी जाति के शीर्षस्थानीय थे । उनकी उदारता और सज्जनता अलौकिक थी । कभी किसी का उन्होंने कोई अनिष्ट नहीं किया था । फिर भी न जाने किस पाप की बदौलत उन्हें यह विडम्बना सहन करनी पड़ी थी । परन्तु वे एक मेधावी और हिम्मत वाले व्यक्ति थे । उन्होंने अपनी सारी ही चेतना व्यापार में लगा दी । और देखते-देखते ही वे एक प्रतिष्ठित व्यापारी बन गए ।

कलकत्ते में राजा राममोहन राय ने ब्राह्मो समाज की स्थापना की थी । इस समय राजा राममोहन राय फारसी में धार्मिक लेख लिखा करते थे तथा फारसी में एक अखबार 'मिरातुल-अखबार' निकालते थे । राधामोहन बड़े चाव से उन लेखों और अखबारों को पढ़ा करते थे । वे ब्राह्मो समाज में प्रविष्ट होने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे । इसी समय राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' बंगाली में तथा 'बंगाल हेरल्ड' अंग्रेजी में निकाला था । राधामोहन इन पत्रों को भी पढ़ते थे । एक दिन वे ब्राह्मो समाज के अधिवेशन में जा कर चुपचाप बैठ गए । उन्होंने देखा—दो तेलुगु ब्राह्मण पर्दे में बैठे हुए वेदपाठ कर रहे हैं । पर्दे के बाहर लिखा हुआ था—यहाँ अब्राह्मण का निषेध है । वेद पाठ की समाप्ति पर उत्सवानन्द ने उपनिषद् पाठ किया और फिर

रामचन्द्र विद्यावागीश ने उसका बंगला में अर्थ समझाया । इसके बाद राजा राममोहन राय का उपदेश फारसी भाषा में हुआ । सभा की समाप्ति पर प्रार्थना-गान हुआ ।

सब लोग उठ गए—केवल राजा राममोहन राय—बैठे रह गए। वे मूक, मौन समाधिस्थ-से बैठे रहे। राधामोहन भी बैठे रहे। जब राजा साहब ने आँखें खोलीं—तो राधामोहन ने उठ कर प्रणाम किया और अपना नाम बता कर कहा—'आप को समय हो—तो मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ ।

'अवश्य, आइए-बैठिए ।

मुझे यह कहने की आप आज्ञा दीजिए कि आप उस महासेतु के समान हैं, जिस पर चढ़ कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश कर रहा है ।'

'यह तो अधिक से भी अधिक है । मैं तो केवल यही जानता हूँ कि अन्धविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवता के बीच में जो खाई है, बहुदेववाद और शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है उन सबको दूर कर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर ले आने का प्रयत्न कर रहा हूँ । परन्तु आप कृपा कर अपना थोड़ा और भी परिचय दीजिए ।

राधामोहन ने अपनी सारी दुर्भाग्यपूर्ण करुण कथा कह सुनाई। फिर कहा—"मैं तीन साल से कलकत्ते में हूँ । ये तीनों साल मैंने सब कुछ भूल कर जमींदार से व्यापारी बनने में व्यतीत किए हैं । इस प्रयास में मैंने अपनी मन-कल्पना और आत्म-ग्लानि को भी छिपा लिया है। मैं जब गाँव से चला था तभी मन ब्रह्मो समाज में प्रविष्ट होने का संकल्प कर लिया था, परन्तु तब मन में विवशता थी, और

अब मैं मन से समाज में प्रविष्ट होना चाहता हूँ। गत छः माह से मैं सत्संग में आता रहा हूँ, पर आप से मिला नहीं।

'मैंने आपको बहुधा देखा। परन्तु अपनी ओर से टोकना ठीक नहीं समझा। अब आपसे मिल कर तथा आपकी बातें सुनकर मैं प्रभावित हुआ हूँ। वास्तव में रूढ़िवाद और जाति परम्परा के दोषों का मुक्त भोगी आपसे बढ़कर और कौन हो सकता है।'

राजा राममोहन राय का कण्ठ भर आया और वाणी अवरुद्ध हो गई। राधामोहन भी न बोल सके। राजा राममोहन राय ने कहा—'क्या आपको मालूम है कि आपकी पुत्र-वधू अब कहाँ है?'

'नहीं मैं नहीं जानता। जानने की चेष्टा भी मैंने नहीं की।

''क्या अब भी जानना नहीं चाहते?'

'चाहता हूँ।'

'किसलिए? यदि वह आपको मिल जाय तो क्या आप उसे ग्रहण करेंगे?

'क्यों नहीं। मेरे पुत्र नहीं है। मैं तो उसी को अपनी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बनाऊँगा।

'और यदि वह विधर्मिणी हो गई हो। उसने उस अंग्रेज से विवाह कर लिया हो जिसने उसका उद्धार किया था। तब?'

'तो भी मैं उसे अपनी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बनाऊँगा किन्तु क्या आप उसके सम्बन्ध में कुछ जानते हैं?

'जानता हूँ।''

'आपने उसे देखा है?

'देखा है।

क्या उसने विवाह किया है?'

"अभी नहीं। किन्तु शीघ्र ही एक मजिस्ट्रेट से उसका विवाह होगा।"

"कोई हर्ज नहीं। क्या आप मुझे उसे दिखा सकेंगे ?'

'मैं उससे पूछूंगा। यदि उसने स्वीकार किया तो आपको ले चलूंगा।"

'क्या आप भी ईसाई-धर्म को अच्छा समझते हैं ?'

"सभी धर्मों के समान ईसाई-धर्म में भी पौराणिक बातें हैं। रूढ़ियों चमत्कारों और अन्धविश्वासों का ढेर है परन्तु इस समय जो सैनिक लोग उसे भारत में ले आए हैं वे अन्धविश्वासी नहीं हैं न वे रूढ़ियों के दास हैं। इसके अतिरिक्त ईसाई-धर्म हिन्दू-धर्म की अपेक्षा कई गुना बलवान् प्रतीत होता है।

क्या आप यह पसन्द करते हैं कि भारतीय जनता क्रिश्चियन धर्म को ग्रहण करे।"

"कदापि नहीं। मैं तो उसका डट कर सामना करना चाहता हूँ। मेरी धारणा है कि उसका सामना करने के लिए आवश्यक है कि भारत यूरोप की वैज्ञानिकता को ग्रहण करे और इस वैज्ञानिकता के साथ अपने धर्म का भी संसार के सामने रखे।'

"इसी से वैज्ञानिकता का वेदान्त और उपनिषद् से कांचन-मणि संयोग करने में लगा हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि मैं सफल होऊँ।'

"आशीर्वाद देता हूँ राजा महोदय, आप सफल हों और मैं आपकी शरण भी आता हूँ।"

'बड़ी ही शुभ वार्ता है मजूमदार महाशय। मैंने हिन्दू-धर्म, इस्लाम और ईसाइयत तीनों धर्मों का अध्ययन किया है। हिन्दुत्व की पवित्रता इस्लाम की रुचि और विश्वास तथा ईसाइयत की सफाई मुझे पसन्द है। ईसाई-धर्म में मैंने कुछ प्राप्त नहीं किया है परन्तु ईसाई देशों के सामाजिक जीवन राजनैतिक संगठन और विज्ञान

से मैं प्रभावित हूँ। धर्म से केवल यही प्रमाणित होता है कि सारी मनुष्य जाति एक परिवार है। अनेक जातियाँ और राष्ट्र उसकी शाखाएँ हैं।'

'मुझे विश्वास है कि आपका यह विश्वास भारतीय उत्थान का एक अंग बन जाएगा।

"ऐसा ही मैं समझता हूँ क्योंकि भारत के प्राचीनतम सत्यों का यूरोपीय नवीन सिद्धान्तों के साथ सामञ्जस्य बिठाए बिना भारत का कल्याण नहीं है।

मैं देखता हूँ कि यूरोप के सम्पर्क से भारत में नई मानवता का जन्म हो रहा है। वैसे ही हिन्दू धर्म भी नया रूप धारण कर रहा है। ब्रह्मोसमाज हिन्दू-धर्म का अभिनव रूप है। हमारा उद्देश्य सभी धर्मों के लोगों के बीच एकता समीपता तथा सद्भाव को जन्म देना है।

आप ठीक कहते हैं। भारत से सती प्रथा को उठाने के लिए भी अब क्रियात्मक कदम उठाया जाना चाहिए।'

"मैंने लार्ड विलियम बेंटिक की सरकार का इस सम्बन्ध में समर्थन किया था। और बड़ी ही कठिनाई से लोग सती प्रथा की रोक-थाम का कानून बनवा सके। अब इस कानून के अनुसार सती होने में सहायक होना कत्ल के बराबर अपराध ठहराया गया है।

'परन्तु कट्टर हिन्दू तो अभी तक इस काम को धर्म पर आघात ही समझते हैं। सुना है उन्होंने प्रीवी कौन्सिल में इस कानून के विरुद्ध अपील की है।

'वह भी खारिज हो गई। और अब देश में कानून लागू हो जायगा।'

"बड़ी प्रसन्नता की बात है परन्तु केवल सती प्रथा बन्द होना ही तो यथेष्ट नहीं है। जब तक बाल-विवाह बन्द नहीं हो जावे, हमारे घरों की दुर्दशा दूर नहीं होगी। बाल विधवाओं से हमारे घर भर जाएँगे। इसलिए पुनर्विवाह और बालिग विवाह की व्यवस्था भी क़ानूनन होना चाहिए।

इसमें अभी समय लगेगा मजूमदार महाशय।

"तो तब तक के लिए मेरा यह अनुदान क़बूल कीजिए। मैं पचास हजार रुपये बाल विधवाओं की शिक्षा-दीक्षा तथा उनकी सुव्यवस्था के लिए देता हूँ।"

'आप का यह कार्य श्लाघनीय है। मैं धन्यवादपूर्वक आपका यह अनुदान स्वीकार करता हूँ। इस रकम से कलकत्ते में एक विधवा सहायक संस्था की स्थापना होगी। अभी-अभी हमने इतनी ही रकम शिक्षा प्रसार के लिए एकत्र की है।'

'मुझे संकोच बहुत है, परन्तु आप से कुछ कहना चाहता हूँ।

कहिए।

"यदि मेरी पुत्रवधू मेरे साथ रहना स्वीकार करे—तो मैं उसे पुत्र की भाँति रखूँगा।"

बात यह है कि वह क्रिश्चियन समति में पाँच वर्ष से रह रही है। उन्हीं के संस्कारों में शिक्षा पा रही है। अब वह एक समझदार सुशिक्षित महिला है। इसलिए उसका विवाह होना ही ज्यादा ठीक है।"

'आप कोई उदार सत्पात्र ढूँढ़ दीजिए, उसी से उसका मैं विवाह कर दूँगा।

"प्रथम तो अभी हमारा ब्रह्मो समाज भी इतना अग्रसर नहीं है। दूसरे वह अंग्रेज तरुण से ब्याह करना चाहती है।"

राधामोहन कुछ देर तक मौन रहे। फिर बोले "तब यही सही। हम विश्व की सभी जातियों में एकता स्थापित कर रहे हैं। मैं अपनी सब सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी उसे ही बनाऊँगा। वह चाहे जिस धर्म में रहे—चाहे जिससे ब्याह करे।"

'खैर, तो आप उससे एक बार मिलना चाहते हैं?"

'अवश्य।'

"तो म आपको मे चलूं या। परन्तु पहले मुझे उससे पूछना होगा।

"क्या वह यहीं कलकत्ता में है?'

'है, यहीं है।

कहाँ ?

पादरी जानसन के घर में।

'तो मेरी दीक्षा कब होगी।

आगामी इतवार को।'

अन्यवाद राम महाशय मैं अपने को इस नए जीवन के सर्वथा उपयोगी प्रमाणित करूँगा।

आपकी कामना सफल हो। यही कामना करता हूँ।"



१०

सन् १८४१ की वसन्त ऋतु में एक अधेड़ उम्र का अंग्रेज कहीं से आ कर नैनीताल के पहाड़ों में चक्कर काटने लगा। उम्र उसकी पचास के पार होगी। कद लम्बा शरीर पतला कमर किसी कदर झुकी हुई चेहरे पर भूरे रंग की छोटी-सी दाढ़ी नाक नोकदार और

आँखें नीली थीं जिनमें एक विशेष प्रकार की चमक थी। यह आदमी नीले रंग का एक ढीला-ढाला लबादा पहने रहता था, और एक ऊँचा नोकदार कनटोप सिर पर रखता था। उसके पैरों में भारी जूते थे तथा हाथ में एक लम्बी पहाड़ी लकड़ी रखता था। उसके कन्धे पर एक बड़ा-सा झोला लटका रहता था। जिस में वह बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ और दवाइयाँ रखता था। जड़ी-बूटियों का उस शौक था। वह बहुधा पहाड़ों में जड़ी-बूटियों की तलाश में चक्कर काटता, कभी-कभी कोई बूटी उखाड़ कर चलता। कभी वह एकान्त में किसी पहाड़ी झरने के निकट किसी पेड़ के तले से डासना लगा कर बैठ जाता और एक मोटी-सी नोट बुक में घण्टा तक कुछ लिखता रहता। कभी वह किसी रम्यस्थली में सघन छायादार वृक्ष की छाया में पैर पसार कर बैठ जाता और घण्टों चुपचाप बैठा रहता।

वह टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता था। पर वह बहुत कम बोलता था। कभी किसी से कुछ माँगता न था। राह-बाट चलत पटाहियों से वह कभी-कभी जड़ी-बूटियों की चर्चा करता। पहाड़ी इलाके के लोग यदि उस से किसी नई बूटी की चर्चा करते तो वह उसे अपनी नोट बुक में लिख लेता था। कभी उस की मौज होती तो नैनीताल की झील के किनारे घण्टों तक बैठा रहता देर तक उस गहरे निर्मल, स्वच्छ सरोवर के नीले जल को देखता—कुछ होठों ही में बुदबुदाता और मन होता तो मछली का शिकार करता था। प्रतिदिन प्रातःकाल वह किसी बस्ती में पहुँच जाता, कभी नैनीताल की बस्ती में, कभी किसी दूसरे पहाड़ी गाँव में। वहाँ पहुँच कर कहता— 'बाबा लोग, मैं डाक्टर हूँ रोग का इलाज करता हूँ। तुम्हारे घर-गाँव में कोई बीमार है तो चलो मैं देखूँगा, दवा दूँगा। मैं खुदा के नाम पर दवा देता हूँ और खुदा से बीमार के चंगे होने की दुआ माँगता हूँ—

रुपया-पैसा मैं किसी से नहीं लेता।" गाँव देहात के लोग उससे परचने लगे। उसने कुछ रोगियों को चंगा भी किया, इससे लोग उसकी आवभगत करने लगे। उसकी अटपटी भाषा विचित्र साधुओं-का सा वेश विनम्र वाणी साधु स्वभाव, परोपकार वृत्ति तथा निर्लोभ व्यवहार से सीधे-सादे पहाड़ के निवासी आवास-वृद्ध प्रभावित होने लगे। उसका आदर-सत्कार करने लगे। बहुत लोग उसे रुपया-पैसा देना चाहते बहुत लोग उसे खाना देना चाहते—पर वह कभी किसी से कुछ नहीं लेता। हँस कर कोमल भाव से अस्वीकार कर देता। बहुधा वह ईश्वर और उसके पुत्र की बातें करता। उसकी बातें सुनने को लोग पास आ जुटते तो वह अपने झोले से बाइबिल निकाल कर सबको दिखा कर कहता—यह ईश्वरीय पुस्तक है। इसमें ईश्वर का वचन है इसमें ईश्वर ने सबकी भलाई की बातें लिखी हैं। सुनो तुम्हारा भी इस से भला होगा। फिर वह पुस्तक बाँच कर सुनाता। उसका भावार्थ समझाता सब लोग शान्ति और धैर्य से सुनते प्रसन्न होते थे। उसकी दवाइयाँ और जड़ी-बूटियों पर सब का विश्वास बढ़ता गया। अब लोग बीमार होने पर उसे ढूँढ़ कर बुलाते और इलाज कराते।

दोपहर बाद वह फिर जंगल में लौट जाता। या तो जड़ी-बूटी की खोज में भटकता या फिर कहीं वृक्ष की छाया में बैठ कर नोट बुक में कुछ लिखता। या नैनीताल के सरोवर के किनारे बैठ कर चुपचाप जल की लहरों को देखता रहता।

प्रत्येक रविवार को वह बच्चों को बताशे बाँटता या कभी इस बस्ती में कभी उस में। वह उस दिन अपनी झोली में बहुत-से खाँड के बताशे खरीद कर भर लेता फिर बच्चों को बाँटता। बच्चे उससे परच गए थे। वे उसे घेर, बताशे लेते—खाते और उसे नाना विधि

तंग करते थे। बच्चों के तंग करने पर वह खीझता न था। खुश होता था। उनके साथ वह स्वयं भी बच्चा बन जाता था। कभी वह उनके साथ नाचने लगता, कभी गाना सुनाता। गाने की एक किताब उसके पास थी। उसी के वह गीत गाता—बच्चे भी उसके साथ सुर मिला कर गाते खेलते और खुश होते थे।

दूर-दूर तक उसकी चर्चा पहाड़ में होने लगी। उसने अपना नाम किसी को नहीं बताया। पर इस इलाके में वह 'गोरा सन्त' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस समय जो स्थान बुकहिल के नाम से नैनीताल के ऊपरी अंचल में चाइना पीक नामक प्रसिद्ध पर्वत शृंग की तलहटी में प्रसिद्ध है, और जहाँ अब सरकारी उच्च अधिकारियों के बंगले और सेक्रेटेरिएट की भव्य और आलीशान इमारतें खड़ी हैं, वहाँ उन दिनों गहन वन था। उधर ऊपर के पार्वत्य प्रदेशों को जाने वाले यात्रियों के अतिरिक्त बहुत कम लोग जाते थे। हिंस्र जन्तु भी वहाँ रहते थे। नैनीताल की बस्ती सरोवर के इसी पार थी—वह भी बहुत विरल। परन्तु इस गोरे सन्त ने अपना निवास उसी ऊपरी वनश्री के अंचल में चुना था। उसने अपने हाथों पत्थर के टोकों से एक छोटी-सी कुटी बनाई थी। कुटी के सामने उसने धीरे-धीरे बहुत-सी धरती साफ कर के उसमें कुछ फल-फूल लगाए थे। अपनी फुर्सत का बहुत-सा समय वह अपने इसी खेत में व्यतीत करता था। फल-फूल के अतिरिक्त उसने बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ भी बोई थीं। धीरे-धीरे लोग उसकी कुटी पर भी आने लगे। वे उससे दवा-दारू लेते, सलाह-मशविरा करते सुख-दुःख की बातें करते और वह सबको उनकी भलाई की बातें बताता। उसने कुछ बकरियाँ भी पाली थीं। वह अपने हाथ से उनका दूध दुहता। बकरी के बच्चों को लाड़-प्यार करता,

प्रेम से उन्हें चराता । धीरे-धीरे उसने अपनी कुटिया का और विस्तार कर लिया । उसमें अब अच्छे-खासे दो-तीन कमरे बन गए । यहाँ कभी-कभी वह राहगीर अतिथियों को ठहराता उन्हें बकरी का दूध पिलाता या चावल आटा ईंधन देता । वे उसकी कुटी में विश्राम पाते आहार पाते और सन्त का गुण-गान करते अपनी राह जाते । कभी-कभी वह किसी आगन्तुक से गंभीर वाणी से कहता—देखो यहाँ घर है, बकरी है खेत है मैं हूँ—पर औरत नहीं है । औरत के बिना आदमी की जिंदगी अधूरी है । गोरे सन्त की इस बात को सुन कर कुछ लोग हँसते कुछ कहते—बाबा एक औरत से तुम ब्याह कर लो । यह सुन कर सन्त भी हँस कर कहता—मैं बूढ़ा हूँ—परदेसी हूँ, सन्त हूँ—मुझ से कौन औरत ब्याह करेगी । इस गोरे सन्त ने कभी किसी वस्तु की किसी से याचना नहीं की थी । पर उसकी यह स्त्री की याचना या अभाव की अभिव्यक्ति प्रभावशाली थी । धीरे-धीरे गोरे सन्त की यह बात भी उस अञ्चल में प्रसिद्ध हो चली । गोरा सन्त किसी स्त्री से ब्याह करना चाहता है । इस चर्चा के साथ स्त्रियों में उसके प्रति उत्सुकता भी बढ़ चली । अब वह जब किसी बस्ती में जाता, तो स्त्रियाँ उसे खास चाव से देखती हँसतीं इशारेबाजी करतीं । परन्तु सन्त की दृष्टि निर्दोष थी हृदय शुद्ध था । वह निस्सन्देह एक जीवन-संगिनी की कामना करता था । परन्तु लम्पट न था । इस कामना से उसके साधु चरित्र में कोई अन्तर न आया । फिर भी अब कोई-कोई उसका समवयस्क अधेड़ व्यक्ति उससे स्त्री की चर्चा करने लगते । कहते—बाबा कोशिश करो तो पहाड़ में तुम्हें कोई लड़की मिलनी कौन मुश्किल है । परन्तु गोरा सन्त यह सुन कर भी हँस देता था । इस प्रसंग में बातचीत को प्रोत्साहन नहीं देता था । ऐसे ही इस विदेशी सत्पुरुष के दिन बीत रहे थे । और अब उसे हिमाचल प्रदेश में रहते तीन बरस बीत चुके थे । ★

इन्हीं दिनों दो साहूकार नैनीताल में रहते थे। दोनों सगे भाई थे। उनके नाम थे—मण्डूशाह और मच्छूशाह। परन्तु पिता के मरने के बाद दोनों अलग-अलग रहने लगे थे। धन-सम्पत्ति सब का बँटवारा हो चुका था। दोनों के घर पास-पास थे। घर पक्के और बहुत विशाल थे। मण्डूशाह बड़ा भाई था और मच्छूशाह छोटा। इनके पिता चन्दूशाह बड़े भारी नामी-गरामी साहूकार थे। दश-देशान्तरों में इनकी हुण्डी चलती थी। नेपाल तिब्बत भूटान और चीन तक इनके कारोबार फैले थे—इन पहाड़ी प्रदेशों से कस्तूरी केसर, खालें कीमती पत्थर जहरमोहरा और नमदे पट्टू शाल गर्म और कम्बल हजारों की सख्या में इनके यहाँ आते और नीचे मैदान के सब शहरों में भेजे जाते थे। मैदानी माल सूती कपड़ा नमक सोना चाँदी के जेवर, दवाइयाँ और दूसरी जीवन यापन की कीमती वस्तुएँ ये ऊपर पहाड़ी प्रदेशों में भेजते थे। अनेक शहरों में उनकी कोठियाँ थीं गुमास्ते थे आढ़तें थीं। चन्दूशाह का लाखों का कारोबार था। पर अब समय बदल चुका था। मुल्क में कम्पनी बहादुर का अमल फैल चुका था। और यह इलाका कुमायूँ डिवीजन बन गया था—जहाँ एक कमिश्नर का हुक्म सब पर चलता था। कम्पनी बहादुर ने ये इलाके नेपाल से छीन लिए थे और अब नेपाल, तिब्बत भूटान और चीन तक का अबाध व्यापार यहाँ निरन्तर युद्ध और विग्रह होते रहने के कारण छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त हो चला था। इन पहाड़ी प्रदेशों का सांस्कृतिक सम्बन्ध नैनीताल से लगभग टूट चुका था। इसी बीच चन्दूशाह की मृत्यु हो गई। और दोनों भाइयों ने आपस में बँटवारा करके अलग-अलग रहना और अपना अपना कारोबार करना आरम्भ कर दिया था। परन्तु अब वह

पुरानी शानो-शौकत और धूमधाम न थी। जहाँ मन्दूशाह के द्वार पर हाथी घोड़े म्याने डौड़ी नौकर, गुमाश्ते मुनीमों का ठठ लगा रहता था वहाँ अब ये सब बातें उन्का हो चुकी थीं। फिर भी मण्डूशाह बड़ा भाई किसी कदर शरीफ, मिलनसार बुद्धिमान और कारोबारी आदमी था परन्तु मण्डूशाह आवारागर्द दुश्चरित्र फजूलखर्च शराबी और जुआरी हो गया था। देखते ही देखते, पिता के मरने के बाद चार साल भी न बीतने पाए कि उसने अपने हिस्से का सब धन फूँक डाला रियासत जायदाद बेचनी और रेहन रखनी आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उसका बाल-बाल कर्ज से बिंध गया और उसका कारोबार चौपट हो गया। पूँजी चुक गई, साख उठ गई, नेकनामी जाती रही। गुण्डों, गुण्डों जुआरियों की सोहबत में वह या तो फिरंगियों की शराब पीता या चण्डू के दम लगाता या इधर-उधर दूसरों की बहू-बेटियों पर हाथ डालता। कितनी ही बार उसकी पिटाई हुई, बेइज्जती हुई, पर उसे इसकी परवाह न थी। बड़े भाई से भी उसने लड़ाई कर डाली। नौबत यहाँ तक पहुँची कि दोनों में बोलचाल भी बन्द हो गई और वह हर बात में भाई की काट करने लगा। दूसरे, उसे मुकदमेबाजी का चस्का लगा। असामियों पर जाल बना कर झूठे-सच्चे मुकदमे उसने खड़े कर लिए, और आए दिन वह अदालत-कचहरियों की धूल फाँकता फिरने लगा। दुर्भाग्य से उसकी स्त्री भी वैसी ही लड़ाकू और लटपटी थी। आए दिन दोनों में कलह होती रहती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके दोनों लड़के आवारागर्द और बेवकूफ हो गए। अभी वे छोटे ही थे कि घर से चीज-वस्तु चुरा ले जाते। न स्कूल जाते न पढ़ते-लिखते।

मण्डूशाह की स्त्री का नाम गोमती था। वह पति ही के समान साधु-स्वभाव हँसमुखी और भली थी। वह अति सुन्दर स्त्री थी।

धर्मभीरु भी वह बहुत थी। कभी किसी ने उसे कड़ी बात कहते नहीं सुना था। इस समय इसके विवाह को सात बरस बीत चुके थे—पर भगवान ने उसकी गोद नहीं भरी थी। इसके लिए न जाने कितनी मानताएँ देवताओं की की गई। कितनी दवा-दारू, जादू-टोने किए गए, तब भगवान् की कृपा हुई—और बस इतने दिन बाद एक पुत्र से उसके घर का सूनापन दूर हुआ। पुत्र-जन्म की बहुत-बहुत खुशियाँ मनाई गईं। दान-पुण्य किए गए। नैमी देवी के मन्दिर में चाँदी का छत्र चढ़ाया गया, दावतें हुईं गाना-बजाना हुआ। बालक बहुत सुन्दर और स्वस्थ था—देख कर माता-पिता अघाते नहीं थे। परन्तु यह देख मण्डूसाह और उसकी स्त्री जलभुन कर राख हो रहे थे और कोई ऐसा काम करने से नहीं चूकते थे जिससे कि बड़े भाई का अनिष्ट हो।

मण्डूसाह ने बहुत बार भाई को मनाने और मेल करने की चेष्टा की—परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। उसका क्रोध बढ़ता ही गया और इस प्रकार यह साहूकार का घराना चौपट होता गया।

★

१२

१९ वीं शताब्दी का आरम्भ होते ही साहित्य से धर्म का संकुचित बाह्य रूप और रीति-रूढ़ता का रूप पृथक हो गया था और साहित्य का प्रत्येक अंग स्वतन्त्र रूप में विकसित होने लगा था। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष ही जीवन के आदर्शों पर पड़ा था और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे। साहित्य सामाजिक जीवन के अधिकाधिक निकट होता जाता था। जीवन के आदर्श बदल रहे थे, अज्ञात परलोक की

आकांक्षा पर जीवन विसर्जन करने के विचार अब तेजी से दूर होते जा रहे थे।

ऐसी ही अवस्था में साहित्य की वाणी में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। हिन्दी से उर्दू पृथक हुई और अंग्रेजी आ सम्मिलित हुई।

जब मुगल बादशाह शाहजहाँ ने दिल्ली को नए सिरे से आबाद कर के शाहजहानाबाद नाम दिया और लाल क़िला बनाकर उसमें रहने लगे—तो खास क़िले का नाम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कह कर पुकारा जाने लगा। उन दिनों लश्कर या छावनी को उर्दू कहा करते थे। उस काल में दिल्ली कोई स्थायी शहर न था मुगलों की छावनी ही थी। बादशाह की जब कहीं रणयात्रा होती थी तो सारी दिल्ली ही उनके साथ जाती थी। जिनमें अधिकांश सैनिक और बाक़ी धोबी तेली तम्बोली मोची कहार, मशुए, भटेरे कसाई बजाज और उनके बाल-बच्चे आदि भी उनके साथ रहते थे। इसलिए जब दिल्ली की शाहरपनाह बन गई, तो दिल्ली एक सुरक्षित सैनिक छावनी का रूप धारण कर गया। तब दिल्ली को भी उर्दू बाजार पुकारा जाने लगा। अकबर के जमाने से ही पश्चिमोत्तर सीमा पार के प्रदेशों से सब जातियों और मज़हबों के लोग मुग़लों की फ़ौज रसानी और कद्रदानी सुन-सुन कर आते और यहीं बस जाते रहे थे। इन सब की पृथक-पृथक बोली थी। वे यहाँ भारतीयों के साथ इकट्ठे रहते सौदा-सुलफ करते बातचीत करते। इससे सबकी बोली मिलजुल कर इस उर्दू बाजार की एक पृथक वाणी हो गई, जो उर्दू कहाई। यही खास क़िले में परिष्कार पा कर धीरे-धीरे फ़ारसी से मिल कर परिष्कृत साहित्य की भाषा बनती चली गई। अब यह शाहजादगाने तैमूरिया की मुख्य भाषा बन गई थी और उसमें काव्य चर्चा फ़ारसी ही की भाँति होने लगी थी तथा उसका रूप हिन्दी से

पृथक होता जाता था। इसकी भाषा की कविता को 'रेख़्ता' कहते थे। इसी से मिर्ज़ा ग़ालिब अपने दीवान को 'रेख़्ता का दीवान' कहते थे। इससे पूर्व कबीर, नानक, तुलसी, सूर आदि प्रमुख कवि अपनी रचनाओं में बहुत से अरबी-फारसी-शब्द प्रयोग में ले आते रहे थे। प्रेममार्गी सूफी कवियों ने तो फारसी-अरबी शब्द ही नहीं व्यंजनाएँ भी विदेशी मिश्रित रखी थीं।

शमसुलवली अल्ला दक्षिण औरंगाबाद के निवासी थे। वे अहमदाबाद के मौलाना वजीहुद्दीन अलवी के मुरीद थे। पहले वे दक्खिनी हिन्दी और फ़ारसी में कविता रचते थे, बाद में वे दिल्ली आए। उन दिनों बादशाह मुहम्मदशाह दिल्ली के तख्त पर थे। दिल्ली में उनका परिचय फ़ारसी के सूफी कवि शाह सादुल्ला से हुआ। उनके कहने से वे सरल हिन्दी को छोड़ फ़ारसी शब्द मिश्रित कविता कहने लगे। यह वह समय था जब दिल्ली में फ़ारसी का ह्रास हो चला था और फ़ारसी मिश्रित 'उर्दू-ए-मुअल्ला' क़िले की ज़बान हो चुकी थी। जो वास्तव में बादशाहों और दर्बारियों की हिन्दी ज़बान थी, और भारतवर्ष में चिरकाल तक रहने के बाद तुर्की और फ़ारसी के मिश्रण से बनी थी। दिल्ली के शाह सादुल्ला गुलशन को फ़ारसी का यह ह्रास बहुत खल रहा था। इसी से उन्होंने वली से कहा—
'ईं हम मज़ामीन फ़ारसी कि बेकार उफ़्तादह अंद दर रेख़्ता बकार बबर। अज़ तू कि मुहासिब ख़्वाहिद गिरफ़्त।

शाह हातिम को वली ने अपना उस्ताद बनाया और उन्होंने तत्कालीन 'शाही ज़बान' में जो 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कहाती थी, पकड़ कर उसमें से हिन्दी भावना और शब्दों को दूर कर उर्दू का एक स्वतन्त्र परिष्कृत रूप स्थापित किया। जिससे रेख़्ता सँवर कर उर्दू बन गई। इसके बाद उर्दू में काट-छाँट 'इसलाह ज़बान'

की पद्धति प्रचलित हुई । यह पद्धति जारी करने वाले लखनऊ के मालिक थे । बाद में इसलाही जबान ही उर्दू बन गई जिसकी फसाहत का एक उदाहरण मीर साहब थे जो दिल्ली के प्रसिद्ध उर्दू कवि थे ।

एक बार वे लखनऊ गए । गाड़ी का पूरा किराया पास न था विवश हो दूसरा एक आदमी भाड़े में शरीक कर लिया । जब सफ़र आरम्भ हुआ और उस आदमी ने बातचीत करना चाहा तो मीर साहब उसकी ओर से मुंह फेर कर बैठ गए । परन्तु उसने कहा— 'अजी कुछ बातचीत कीजिए कि रास्ता मजे में कटे । मीर साहब नाराज हो कर बोले— क़िबला आपने किराया दिया है, तो बेशक गाड़ी में बैठिए, मगर बातों से क्या तास्लुक ?

उसने कहा— 'हजरत क्या मुजायका है, राह का शुग़ल है । बातों में जी बहलता है ।

मीर साहब बिगड़ कर बोले— आप का शुग़ल है मगर मेरी जबान खराब होती है ।

यह उन दिनों उर्दू के प्रारम्भिक महारथियों की मनोवृत्ति थी । उन्हें न तो किसी एसे साहित्य के निर्माण का ध्यान था जिससे मनुष्य का कल्याण हो विचारों की धाराएं उत्पन्न हों, या किसी प्रकार से भी लोकहित हो । वे तो केवल शाब्दिक मल्लयुद्ध करते थे । भाषा से खिलवाड़ करते थे । भाषा को खिलौना बनाते थे और उनके निठल्ले शागिद निकम्मे नवाब और रईसजादे उनकी बात-बात में वाहवाही करते थे । यद्यपि मुसलमानों की भांति बहुत-से हिन्दू भी उर्दू के विद्वान कवि थे परन्तु उर्दू में तब एक जातीय पक्षपात भी घुस चला था । एक बार जब उर्दू कोष के निर्माण की बात चली तो मौलाना हाली ने कहा— 'कोष लिखनेवाले कोई शरीफ मुसलमान हों क्योंकि खुद देहली में भी फ़सीह उर्दू सिर्फ मुसलमानों की जबान

समझी जाती है। हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति उर्दू-ए-मुअल्ला को उनकी मादरी ज़बान नहीं होने देती।"

फोर्ट विलियम कालेज के प्रतिष्ठाता और प्रिंसिपल डाक्टर गिल क्राइस्ट फारसी और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना का उद्देश्य अंग्रेजों को हिन्दुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराना था वे बराबर कहा करते थे कि हमें किताबी मजलिसी या दर्बारी उर्दू की ज़रूरत नहीं है ठेठ हिन्दुस्तानी खड़ी बोली यहाँ तक कि हिन्दी रेख्ता में किताबें लिखी जावें। डा० गिल क्राइस्ट के सम्मुख भाषा का एक सामान्य ढाँचा था जिसका रूप एक था, केवल लिपि का अन्तर था। उसे ही वे सच्ची देश भाषा मानते थे। परन्तु अब उर्दू हिन्दी से पृथक हो चुकी थी। और वह देश भाषा न थी, केवल बड़े-बड़े मुसलमानों की दरबारों और नगरों में पढ़ी जाने वाली शौकिया भाषा थी। डा० गिल क्राइस्ट ने कड़ी चेतावनी दी थी कि बोलचाल की भाषा में लिखो। उनकी सतर्कता के कारण फोर्ट विलियम कालेज नासिख के स्कूल का अखाड़ा न बन पाया। परन्तु अदालत-कचहरियों में उर्दू ही को स्वीकार किया गया इसका सर्वसाधारण पर व्यापक प्रभाव पड़ा और वह धीरे-धीरे सर्वसाधारण की पृथक् भाषा बन गई।

मुसलमान बादशाह सदैव पृथक-पृथक एक हिन्दीनवीस और एक फारसीनवीस रखा करते थे और उनकी आज्ञाएँ दोनों भाषाओं में लिखी जाती थीं। उसी प्रथा पर कम्पनी की सरकार ने यद्यपि सुविधा के विचार से उर्दू को अदालती भाषा बना लिया था, पर पश्चिमोत्तर प्रदेश में जहाँ हिन्दी बोलचाल की भाषा थी। नागरी अक्षरों में हिन्दी अनुवाद भी उर्दू क़ानूनी पुस्तकों का साथ देती थी परन्तु मुसलमान हिन्दी को अदालतों से निकलवा चुके थे, उसी भाँति

उन्होंने यह भी चेष्टा की कि हिन्दी को शिक्षाक्रम में भी स्थान न मिले। इसलिए जब सरकारी वर्नाक्यूलर स्कूलों की स्थापना की योजना बनी तो कम्पनी की सरकार ने चाहा कि सब विद्यार्थियों के लिए हिन्दी पढ़ना अनिवार्य बना दिया जाय पर मुसलमानों ने उसका घोर विरोध किया। इन विरोधियों के नेता सर सैयद अहमद थे, जो हिन्दी को गँवारू बोली कहा करते थे परन्तु इसी समय राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द हिन्दी की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। वे अंग्रेज सरकार के उतने ही कृपापात्र थे जितने कि सर सैयद। इन दोनों का हिन्दी-उर्दू का झगड़ा बरसों तक चलता रहा।

फारसी बहुल उर्दू अदालती भाषा इसलिए बनाई गई थी, कि मुगल परम्परा में शताब्दियों से शब्द विन्यास और परिभाषा की जो परम्परा चली आती थी उर्दू उसके निकट थी उसकी लिपि भी वही थी। इस तरह उर्दू को एक कामचलाऊ अदालती भाषा मान लिया गया था परन्तु वह धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा बनती गई और मुस्लिम लेखकों ने फिर हिन्दी लिखना छोड़ कर उर्दू में ही साहित्य लिखना आरम्भ कर दिया। जीविका और प्रतिष्ठा के ख्याल से हिन्दू सज्जन भी अपने लड़कों को उर्दू ही सिखाने-पढ़ाने लगे। उर्दू पढ़े-लिखे ही शिक्षित माने जाने लगे। हिन्दी से नई पीढ़ी के युवकों का लगाव कम हो गया।

जब हिन्दी की पुत्री उर्दू हिन्दी से पृथक हो रही थी तभी सुदूर समुद्र पार देश की अंग्रेजी भाषा एक सम्पन्न नई दुलहिन की भाँति अपनी सम्पूर्ण विभूति को लेकर हमारे मानस-मन्दिर में आई। इस भाषा के साथ साहसिक समुद्री विजयों के अभ्यस्त एक राष्ट्र एक भाषा, एक देशीयता से सम्बद्ध एक दृढ़ निश्चयी, दृढ़ क्रियाशील, उद्योगी दुर्धर्ष और मेधावी जाति का इतिहास और संस्कृति थी।

उसे हमारे मन मानस में प्रतिष्ठित करने में उसी साहसिक जाति के अग्रणियों का हाथ था । इस भाषा के साथ विगत पाँच सौ वर्षों के सर्वोच्च मस्तिष्कों का निष्कर्ष था जिनमें महामनस्वी गेटे बैरन, वर्ड्सवर्थ टेनीसन शेली कालरिज, कीट्स जैसे कवि श्रेष्ठ और शेक्सपियर बर्कले बेकन उर्मिग, मिल्टन ब्राउने स्काट हैजलीट चार्ल्स लैम्ब टामस हार्डी, स्पेन्सर जैसे नाटककार, दार्शनिक, वैज्ञानिक और विश्वदर्शियों की अनुभूति मिश्रित थी । इस अंग्रेजी भाषा के तेज, दर्प सौन्दर्य और अपरिसीम सामर्थ्य ने हमें एक बारगी ही विमोहित कर लिया । उसने कुल वधू की भाँति चुपचाप हमारे घर के सम्पूर्ण वातावरण को अपने साँचे में ढाल लिया । हमने आश्चर्य विमूढ़ होकर अपने को अकस्मात् न केवल नवीन रहन-सहन और वेषभूषा से सुसज्जित प्रत्युत नए विचारों, नई आशाओं नए हौसलों और नई प्रतिक्रियाओं से ओत-प्रोत पाया । हमारा विचार-दौर्बल्य हमारा सामाजिक रूढ़िवाद, हमारा राजनैतिक अज्ञान और दार्शनिक जड़ता जैसे जादू के जोर से सजीव और स्फूर्तिमय हो उठी । हमने रोगी की भाँति पथ में नपे-तुले चरण रखने और निरर्थक भाव प्रदर्शन छोड़ दिए और स्वस्थ अल्हड़ युवक की भाँति स्वच्छन्द मन के खुले मैदान में दौड़ लगाना आरम्भ कर दिया देखते-देखते हमारी सहस्रों वर्ष की मरी हुई आकांक्षाएँ और सोई हुई जीवन भावनाएँ जाग उठीं । हमने अनायास ही एक नई दृष्टि से अपने जीवन को अपने देश और उससे सम्बन्धित संसार को देखा । हमने एक तिरस्कृत और मरणासन्न जाति के स्थान पर जीवन और चेतना के सम्पूर्ण लक्षणों से ओत-प्रोत तथा ज्योतिर्मय जनपद के रूप में अपने को पाया ।

हम अपनी प्राचीन सभ्यता जीवन और परिपाटी को भूल चुके थे । हम आर्यों की उन असाधारण विभवों के संस्कार भी भो

थे जिन्होंने अब से हजारों वर्ष पहले पंजाब का आविष्कार और संस्थापन किया था। जो दुरूह उत्तर के उत्तुंग हिमालय के अवरोधों को विदीर्ण करके इस हरे भरे,भारत में आए थे। यहाँ की जगत्प्रसिद्ध सभ्यता निर्माण की थी। प्रबल राज्य स्थापित किए थे। प्रशान्त वातावरण में अगम्य अगाध अध्यात्मतत्त्व जो अत्यन्त प्राचीन होने पर भी आज भी वैसे ही ताजे और बहुमूल्य हैं खोज निकाले थे। हम बिल्कुल भूल गए थे कि कुरुओं और पांचालों की प्राचीन राजधानियाँ कहाँ थीं। हम नहीं जानते थे कि महान् बुद्ध जब अपने धर्म-विस्तार में लग हुए थे तब उस समय मगध की गद्दी से कौन हिन्दू सम्राट समुद्र की लहरों पर हुकूमत करता था। हम यह भी नहीं जानते थे कि हमारे किन पूर्वजों ने समुद्र को अतिक्रान्त कर के चीन अरब यवद्वीप और पाताल में अपने उपनिवेश कायम किए थे। हम आंध्र गुप्त नाग आदि महाराज्यों के नाम भी भूल गए। हमें पता नहीं था— कि शकों ने किस प्रकार भारत को आक्रांत किया था और विक्रम ने उन्हें कैसे पदाक्रांत कर दलित किया था। हमें बिल्कुल स्मरण नहीं रह गया था—कि एलोरा और अजंता की गुफाएँ, साँची के स्तूप भुवनेश्वर और जगन्नाथ के मन्दिर कब और किसने बनाए थे।

आर्य जैसी प्राचीन जाति की प्राचीन सभ्यता का इतिहास नष्ट हो चुका था और उस जाति के बच्चों को इसकी कुछ भी खबर न थी। वे या तो भेड़-बकरियों के झुण्ड की भाँति मन्दिरों में देवता के सम्मुख बैठ कर अपने को कायर-कुपूत कुकर्मी और अधर्मी कह कर काल्पनिक स्वर्ग के सुख-स्वप्नों की हास्यास्पद कामनाएँ किया करते थे या अपने दीन-दुखी अरक्षित असहाय निराश जीवन में बैठे-बैठे संसार की अनित्यता का रोना रोया करते थे। साहित्य

की मर्यादा और शृंगार या तो मार-काट की प्रशंसा करने में या अपनी ही वधूटियों के निर्लज्ज और अत्युक्तिपूर्ण अश्लील वर्णन करने में समाप्त हो जाता था। ऐसा ही वह समय था, जब अंग्रेजी भाषा नववधू के रूप में अपने मोहक भावों और अनूठे शृंगार को लेकर हमारे घर आई।

इस नववधू को आत्मसात करने की प्रतिक्रिया भी अद्भुत हुई। सन् १८१५ में कम्पनी की सरकार ने भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा कर उसके द्वारा भारत के शासन में सहयोग करने के प्रस्ताव को कार्यरूप दिया। अंग्रेजी माध्यम से भारतीय युवकों को शिक्षा देने के लिए अनेक स्कूल और कालेज खोले। उनमें जब भारतीय बालक अंग्रेजी पढ़ कर एक विचित्र भावभंगी प्रकट करने लगे तो भारतीय जनता में कौतूहल बढ़ा। ईसाई मिशनरियाँ इस काम में प्रथम ही से काफी उद्योग कर रही थीं। इन्हीं सब बातों से राममोहन राय जैसे उद्ग्रीव मनीषि जन चौंकने हुए थे। पहले उन्हें ईसाइयों का निरीह दरिद्र और मूर्ख दलित स्त्री-पुरुषों को ईसाई बना कर धर्मभ्रष्ट करना बुरा लगा। परन्तु जब उन्होंने उन्हें शिक्षित और उन्नत जीवन व्यतीत करते देखा तो हठात् उनके मन में दलितों के प्रति अपने अन्याय का भान हुआ। इसी प्रकार जब पाश्चात्य उन्मुक्त वायु में पुरुषों के साथ स्पर्धा करती हुई महिलाओं को उन्होंने देखा, तो उन्हें अपने गन्दे घरों की चहारदीवारी में बंद निरीह स्त्रियों की दीन-दशा पर भी क्षोभ हुआ।

यह प्रतिक्रिया सर्वप्रथम बंगाल से ही आरम्भ हुई। बंगाल में ही अंग्रेजों ने अपना प्रथम निवास बनाया था। उस समय बंगाल की विषम अवस्था थी। सारा बंगाली समाज धार्मिक रूढ़ियों में ग्रसित था। सबसे प्रथम यहीं ईसाइयों ने अपने अड्डे बनाए थे और

नवीन पद्धति पर अपने नए धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया था। प्रचार की सहायता के लिए जो सबसे नई वस्तु उनके पास थी, वह छापने का प्रेस था। इसके द्वारा उन्होंने चमत्कारिक रूप में एक ही पुस्तक की अनेक प्रतियाँ छाप-छाप कर सस्ते मूल्य में सबसाधारण को सुलभ कर दी थीं। वे मूर्तिपूजा छुआछूत आदि हिन्दू-धर्म की बाहरी और स्थूल बातों पर अधिक जोर देते और नए तर्कों के सहारे उनका खण्डन-मण्डन करते थे। इन्हीं सब बातों से राजा राममोहन राय और उनके साथी प्रभावित हुए थे। ईसाइयों को यह नहीं ज्ञात था कि ईश्वरवाद का ईसाइयों से भी उत्कृष्ट रूप वेदान्त और उपनिषदों में वर्णित है। तत्कालीन हिन्दुओं का भी उधर ध्यान न था। राजा राममोहन राय ने इसी 'ब्रह्म' का ब्रह्मास्त्र ले ईसाइयों तथा पाश्चात्य संस्कृति की बढ़ती लहर से टक्कर ली। अंग्रेजों के सहवास से उनमें जो एक नव चेतना का उदय हुआ था उसके आधार पर उन्होंने समाज के बाहरी अंग का नव-निर्माण करने में साहसपूर्ण कदम उठाया था। ईसाइयों की भाँति राजा राममोहन राय भी केवल बंगालियों ही को नहीं हिन्दू-भाव को प्रभावित करना चाहते थे। इसी से उन्होंने वेदान्तसूत्रों का भाष्य हिन्दी में छपवाया था तथा हिन्दी ही में बंगदूत नामक पत्र निकाला था।

अभी तक भी कम्पनी सरकार ने कलकत्ते में कालेज नहीं खोला था, परन्तु राजा राममोहन राय और उनके मित्रों ने हिन्दू कालेज की स्थापना कर ली। जिसमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी। इस कालेज में अंग्रेजी पढ़-पढ़ कर युवक सरकारी नौकरियाँ धड़ाधड़ पाने लगे। इससे लोगों की सामाजिक परिस्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ा और प्रत्येक संस्कृत और प्रतिष्ठित व्यक्ति के हृदय में अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ा कर अंग्रेजों की नौकरी में लगाने

की अभिलाषा होने लगी और यह अभिलाषा इतनी प्रबल हुई—कि उन लोगों के मन में दूसरी किसी आजीविका का ध्यान ही न रहा। इसका एक कारण यह भी था कि वे देख चुके थे कि कम्पनी सरकार की नौकरी में रह कर कितने छोटे खानदान बंगाल के प्रतिष्ठित खानदान बन चुके थे। इस समय भी सरकार अरबी फारसी और संस्कृत के मकतबों और पाठशालाओं को थोड़ी-बहुत सहायता दे रही थी परन्तु अंग्रेजी के नए शौक के सामने इस पुरानी पद्धति की पुरानी चटशालाओं और मकतबों की ओर लोगों की बहुत कम रुचि रह गई थी। धीरे-धीरे इन शिक्षा-केन्द्रों की सरकारी सहायता बिल्कुल बन्द हो गई और सारे देश में अंग्रेजी शिक्षा का बोलबाला हो गया।

लार्ड मकाले—जिन्होंने भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने की सिफारिश की थी—पूर्वीय साहित्य पर बहुत कम निष्ठा रखते थे। उनकी मान्यता थी कि यूरोप के अच्छे साहित्य की एक आलमारी हिन्दुस्तान और अरब के सारे साहित्य के बराबर मूल्य रखती है। इसी पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने सन् १८३३ के चार्टर पर पार्लियामेण्ट में भाषण देते हुए कहा था—' मैं चाहता हूँ कि भारत में यूरोप के सब रीति-रिवाजों को जारी किया जाय जिससे हम अपनी कला और आचार-शास्त्र, साहित्य और कानून का अमर साम्राज्य भारत में कायम करें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम भारतवासियों की एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करें, जो हमारे और उन करोड़ों के बीच में, जिन पर हमें शासन करना है दुभाषिए का काम दें। जिनका खून तो हिन्दुस्तानी हो, पर रुचि अंग्रेजी हो। संक्षेप में अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय तन से भारतीय पर मन से अंग्रेज हो जायें, जिससे अंग्रेजों का विरोध करने की उनकी भावना ही नष्ट हो जाय।"

परन्तु लार्ड मेकाले की यह इच्छा पूरी न हुई। इसका कारण यह था कि भारतीय वाङ्मय के सम्बन्ध में उनका ज्ञान बहुत कम था। इधर अंग्रेजी पढ़कर हिन्दू-धर्म में जागृति की एक ऐसी लहर उठी कि हिन्दुत्व का सारा ही दौर्बल्य उसमें बह गया। एक चमत्कार यह भी था कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शासन में सामञ्जस्य नहीं उत्पन्न हुआ। अंग्रेजी भाषा के द्वारा भारतीय नई पीढ़ी के खून में, बेंथम, कारमाइल और मिल के अनेक विचार प्रविष्ट होते गए और उनमें गौरव बलिदान और वीरता का समावेश होता गया। अन्त में राष्ट्रीयता की एक आधारशिला स्थापित हो गई और अंग्रेजी पढ़े लिखे ऐसे लोगों का एक दल उत्पन्न हो गया, जिसका उद्देश्य सामाजिक था और जो केवल अपने को ही नहीं, अपने देश और समाज को भी पहचानने की इच्छा रखता था। उस समय समाज और देश के प्रति जो नवीन चेतना जागी—उसी के भीतर हमारी सारी राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों का जन्म हुआ।

परन्तु इसी बीच यूरोप की नजर भारत की सांस्कृतिक सम्पदा पर पड़ी। अब तक यूरोप भारत को धनधान्य से भरापूरा, नवाबों और मुगलों का देश समझता था और उसकी दृष्टि लूट-खसोट में थी। सभ्यता और संस्कृति के उद्गम के सम्बन्ध में यूरोप का विश्वास था कि उसका आरम्भ यूनान और फिलस्तीन में हुआ है। वे यह भी समझते थे कि वही देश संसार में सब से प्राचीन सभ्यता वाले हैं। भारत को तब तक यूरोप के लोग एक अर्द्ध-सभ्य देश समझते थे परन्तु जब यूरोप के निवासियों ने संस्कृत सीखी तो उनका परिचय उपनिषद् तथा बुद्ध जैन और बौद्ध-धर्मों से हुआ। जिन दिनों प्लासी का युद्ध हो रहा था उन्हीं दिनों एक फ्रेंच नवयुवक भारत में प्राचीन पाण्डुलिपियाँ यत्न से खोजता फिर रहा था। वह भारत

स कोई अस्सी पाण्डुलिपियाँ अपने साथ फ्रांस ले गया। इस युवक का नाम डुपरोन था। इन पाण्डुलिपियों में एक पाण्डुलिपि दारा शिकोह द्वारा फारसी में अनुवादित उपनिषदों की भी थी। डुपरोन ने लैटिन में इसका अनुवाद कर के 'औपनिखत' के नाम से प्रकाशित किया। जिस पढ़ कर जर्मन का प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहार आश्चर्य-विमूढ़ हो गया और उसके मुँह से यह उद्‌गार निकले 'इसने मेरी आत्मा की गहराई को झिंझोर दिया है। इसके प्रत्येक शब्द से मौलिक विचार ऊपर उठते ह जिसस भारतीय विचारधारा का वातावरण आप ही उठ खड़ा होता है। ऐसा प्रतीत होता है—मानो ये विचार हमारे अपने आत्मिक बंधु के विचार हों। हमारे मनों पर जो पहुली संस्कारों की रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाए हुए हैं, वे इन विचारों के स्पर्श मात्र स एकबारगी ही गायब हो जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई और ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है और मृत्यु-पर्यन्त यह मर साथ रहेगा।'

जर्मनी में उपनिषदों के अध्ययन से विचारों का जागरण उसी प्रकार हुआ जैसे रिनासां के समय में प्राचीन यूनानी साहित्य के सम्पर्क से सारे यूरोप में हुआ था। इसके बाद जोहान फ़िक्टे और पॉल डूसाम ने वेदान्त के सत्य को संसार का सब से बड़ा सत्य माना और जब नीत्से ने मनुस्मृति को पढ़ा तो उसने उसे बाइबिल से कई गुना श्रेष्ठ कहा।

इसी समय वारेन हेस्टिंग्स के मन में यह विचार आया कि न्याय के क्षेत्र में हिन्दुओं पर शासन उन्हीं के धर्मशास्त्रों के अनुसार किया जाना चाहिए। इसके लिए उसने पहले धर्मशास्त्रों का फारसी भाषा में और अंग्रेजी में कराया। इसके -

से आए हुए जजों और वकीलों को उसने संस्कृत पढ़ने को प्रेरित किया। उन्होंने यद्यपि कचहरी की आवश्यकता के लिए संस्कृत पढ़ी पर जब उन्होंने वहाँ का भाव-गाम्भीर्य और विचारों का मार्दव देखा, तो वे एकवारगी ही भावाभिभूत हो उठे। इसके बाद सन् १७८४ में सर विलियम जोन्स ने जो उन दिनों कलकत्ते के प्रधान न्यायाधीश थे, एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की तथा स्वयं कालिदास की शकुन्तला का अनुवाद किया और ऋतुसंहार का एक सम्पादित संस्करण प्रकाशित कराया।

इसके एक वरस वाद सर चार्ल्स विलिकिन्स ने भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। सर जोन्स संस्कृत पर मुग्ध हो गए। उन्होंने सन् १७८४ में मानव धर्मशास्त्र नाम से मनुस्मृति का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। जब सन् १७८६ में एशियाटिक सोसाइटी का अधिवेशन हुआ तो यह घोषणा कर दी कि संस्कृत परम अद्भुत भाषा है और वह लैटिन और ग्रीक से अधिक सम्पन्न है। उन्होंने यह विचार भी प्रकट किया कि गोथिक और केल्टिक भाषा परिवार का उद्गम संस्कृत ही है। आगे इसी बुनियाद पर फ्रांजबाप मैक्समूलर और ग्रिम ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान का महल खड़ा किया। इसके तत्काल बाद यूरोप के पण्डितों ने निरुक्त और व्याकरण का मनन किया और फोनेटिक्स लिखना आरम्भ किया।

विलियम जोन्स की मृत्यु के बाद उनके कनिष्ट सहकारी हेनरी टामस कोलब्रुक एक महान् प्राच्य विद्या विशारद प्रसिद्ध हुए। उन्होंने हिन्दू धर्म-शास्त्र दर्शन व्याकरण ज्योतिष और धर्म का बड़ा ही मार्मिक अध्ययन "एशियाटिक रिसर्चेज" में प्रकाशित किया। वेदों का भी एक प्रामाणिक विवरण 'आन द वेदाज' सब से प्रथम उन्होंने

निकामा। इसी समय एक अद्भुत घटना ने यूरोप में एक नई सांस्कृतिक लहर उत्पन्न कर दी। यह घटना उस समय घटी जब लार्ड वेलेजली भारत में सब्सीडियरी सन्धि के जाल में भारतीय नरेशों को फांस रहा था और पेशवा बसीन की संधि पर हस्ताक्षर कर रहा था। यूरोप में नेपोलियन का डंका बज रहा था और वह भारत की विजय कामना से मिस्र तक आ पहुँचा था। उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक कर्मचारी अलेक्जेण्डर हैमिल्टन पेरिस में ठहरा हुआ था, उसे नेपोलियन ने कैद कर लिया। वह आदमी संस्कृत का पण्डित था। उसने जेल में लोगों को संस्कृत पढ़ाना आरम्भ कर दिया। उस समय जेल में चेज़ी नामक एक फ्रांसीसी व्यक्ति था जो थोड़ी संस्कृत जानता था। वह हैमिल्टन से मिला और अपने संस्कृत ज्ञान को उसने बढ़ाया। बाद में श्लीगल बन्धुओं ने इन दोनों से संस्कृत पढ़ी। एक और फ्रांसीसी विद्वान् यूजीनबर्नाफ़ भी संस्कृत पढ़ने लगे। इस प्रकार फ्रांस के इस जेलखाने में संस्कृत की एक अच्छी खासी पाठशाला खुल गई। यूजीनबर्नाफ़ जेल से बाहर आकर फ्रांस में संस्कृत के अध्यापक बन गए। बर्नाफ़ ने रुडल्फराथ और मैक्समूलर को अपना शिष्य बनाया। मैक्समूलर जर्मन था। उसने सायण के भाष्य पर महत्वपूर्ण अध्ययन किया और उसके बाद उसने वेदों का भाष्य किया, जिसने यूरोप भर की आँखें खोल दीं। वेद भाष्य से बढ़ कर एक काम उसने यह किया कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा स्थापित की। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के मोहान्धकार का पर्दा हट गया। अब तक वे जो यह मानते आ रहे थे कि फिलिस्तीन और यूनान सब से पुराने देश हैं, और हिब्रू भाषा सब से पुरानी भाषा है तथा बाइबिल का यह कथन भी कि—सृष्टि केवल चार हजार बरस

पुरानी है ये सब मान्यताएँ बिखर गईं। मैक्समूलर ने प्रमाणित कर दिया कि ससार की प्राचीनतम जाति आर्य है, और प्राचीनतम साहित्य वेद है। इस प्रकार विद्वानों ने भारतीय साहित्य दर्शन और धर्म का जो बखान किया, उसने ईसाइयों के उस प्रचार को भी मिथ्या कर दिया जो वे भारत से बाहर करते थे कि भारत अर्द्ध-शिक्षित देश है। अब यह ज्ञान सम्पदा पाकर अंग्रेज इस बात पर गौरव अनुभव करने लगे कि सभ्यता का केन्द्र भारत उनके साम्राज्य के अन्तर्गत है। श्लीगल बन्धुओं ने अपनी भाषा के द्वारा यूरोप में भारतीय ज्ञान का काफी विस्तार किया। वेद उपनिषद् भगवद्गीता मनु स्मृति शकुन्तला और वेणीसंहार को देखकर जर्मन कवि और विद्वान् विस्मय से मुग्ध हो गए। इस साहित्य के भाव और विचार नए क्षितिज के थे। श्लीगल ने गीता की प्रशंसा पागलों की भांति की और कहा—"ओ ईश्वरत्व के व्याख्याता, तुम्हारी वाणी के प्रभाव से मनुष्य का हृदय ऐसे अकथनीय आनन्द की भूमि में पहुँच जाता है—जो अत्यन्त उच्च-सनातन और ईश्वरीय है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और तुम्हारे चरणों में अपना अभिनन्दन भेंट करता हूँ। भारतीय काव्यों की विलक्षणता पर सर्क्ज ने प्रकाश डाला। गेटे ने शकुन्तला की प्रशस्ति लिखी। गेटे आदि ने संस्कृत परम्पराओं को अपनाया और श्लीगल से हाइने तक जर्मन कविता में भारतीय भाव फैलते ही रहे।

इस प्रकार भारत की गौरवगाथा यूरोप में बढ़ती देख अंग्रेज चौकन्ने हो गए। वे नहीं चाहते थे कि यूरोप में भारत की प्रशंसा हो, तथा यूरोप के लोग भारतीय भावों को ग्रहण करें। वे भारत में अपना राज्य पसाना चाहते थे। खासकर बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स यह नहीं चाहता था कि इंग्लैण्ड वाले भी यह जान जायें कि भारत

और ह्विटलिंग ने संस्कृत-कोष बनाया, तो गोल्डस्कर ने उनका भण्ड फोड़ करते हुए कहा—कि राथ वेबर, ह्विटलिंग कूहन आदि लेख किसी खास गूढ़ उद्देश्य से इस बात के लिए कृत-संकल्प हैं कि प्राची भारत का गौरव नष्ट किया जाय।

जब भारत में अंग्रेजी विश्वविद्यालय खोले गए तो उनमें नियुक्त हो कर अंग्रेज और जर्मन अध्यापक और महोपाध्याय भारत में आं लगे। विद्यार्थी उनका मान और आदर करते। उनकी बता विद्या को वास्तविक समझते। जो कोई भारतीय ढंग की बात करता उसे तर्क-विरुद्ध विद्या विरुद्ध, इतिहास-विरुद्ध बुद्धि-विरुद्ध प्रमाण शून्य कहानी अथवा मिथ्या कथा कह कर उनका उपहास किया जां लगा। ये धम्म विदेशी लेखकों और अध्यापकों ने इतनी अधिकत से प्रयोग किए कि भारतीय अध्यापकों और छात्रों के लिए वे परिभाष बन गए। अब अंग्रेज शासकों ने और एक पग बढ़ाया। विश्वविद्यालयों क अनेक परीक्षोत्तीर्ण श्रेष्ठ विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ दी गईं कि वे विदेश जाकर संस्कृति इतिहास समाजशास्त्र अर्थशास्त्र दर्शन शास्त्र और धर्मशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करें। ये छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र जब विदेश से भारत लौटे तो पूरे विदेशी भावों से भरे हुए थे। अंग्रेज और जर्मन लोगों की भाँति ये लोग भी कहने लगे—कि भारतीय इतिहास लेखक वाल्मीकि और व्यास ऐतिहासिक बुद्धि नहीं रखते थे। इस तरह की बात कहने वालों का ब्रिटिश सरकार बहुत आदर करती थी। इस प्रकार पुरानी विद्याओं के प्रति घृणा क भाव इस शिक्षित वर्ग में जड़ पकड़ गए।

वह बड़ा अद्भुत काल था। हिन्दुत्व चारों ओर से रूढ़िवाद और कुरीतियों से जकड़ गया था और अब अंग्रेजी पढ़ कर जो नवयुवक तैयार हो रहे थे। वे मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं मान रहे थे।

कालेज में ईसाई पंथ की शिक्षा दी जाती थी । संस्कृत भाषा प्र
कोई पढ़ता ही न था—पढ़ता भी था तो काव्य-नाटक । इस वि
यूरोप में भी धर्म की छीछालेदर हो रही थी । धार्मिक यन्त्रणा-ग्
और यन्त्रणाओं ने लोगों को धर्म निरपेक्ष कर दिया था । इस
परिणाम भारतीय नवशिक्षित तरुणों पर यह हुआ कि वे धर्मच्यु
हो गए । अब वे किसी भी समाज के सदस्य न थे । विचारों
अवश्य अंग्रेज थे । अब वे घर में विदेशी और अपने गाँव में बहिष्कृ
थे । इन्हें देख कर ईसाई कहने लगे थे— कि अब भारतवासि
को क्रिश्चियन बनाने में किसी विशेष आयोजन की आवश्यकता नहीं
है, वास्तव में वे हिन्दुत्व के ईसाई मिशनरियों से भी अधिक शत्रु थे ।
ये लोग अब सामाजिक सुविधा के लिए धर्म परिवर्तन करने में भी न
हिचकते थे । ऐसे धर्म परिवर्तन करने वालों में माइकेल मधुसूदन
प्रमुख थे । खास कर यूरोपियन प्रेम के नाटक कहानियाँ पढ़ कर
हिन्दू युवकों से हिन्दुत्व के अवरोध में न रहा गया । वे ईसाई होने
लगे । मस्तिष्क में स्वतन्त्र विचारों का तूफान, हृदय में यौवन की
रंगीन उमंगें परन्तु पर्दे और जाति के बंधन की बाधाएँ । उन्होंने
बंधन की सब बाधाओं को दूर कर क्रिश्चियन बन कर अपनी एक
नई जाति स्थापित करनी आरम्भ कर दी । इधर यह हो रहा था—
उधर समाज में भ्रूण हत्याएँ चल रही थीं बालिकाओं का वध होता
था, सती पर निर्मम अधर्म होता था छुआछूत का बोलबाला था
विधवा विवाह नहीं हो सकता था । शूद्र और स्त्रियों को मानवीय
अधिकार प्राप्त न थे । लोग छिप कर नीच स्त्रियों से व्यभिचार
करते थे । तीर्थ व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे । महन्तों के घर
पापाचार के गढ़ थे पुजारी-पण्डे आलसी स्वार्थी और दुराचारी
थे । स्त्रियों का व्यापार होता था । गुलाम खरीदे-बेचे जाते थे ।

मर-धनि सी होती थी। लोग समझते थे—य बातें रुकी नहीं जा सकतीं। रोकने से अधर्म होता है। जो लोग यूराप घूम आते थे, व लौटने के बाद अपने माता-पिता को प्रणाम करते शर्माते थे। जो मम को ब्याह लाते य—वे पृथक घर बसाकर रहते थे। यही वह समय था जब राजा राममोहनराय न ब्रह्मसमाज क घर में समग्र नई पीढ़ी क उदय हिन्दुओं को लपेट लिया।



१३

राजा राममोहन राय के अनुरोध स गुमला न अपने श्वसुर राधा॰ मोहन मजूमदार से मुलाकात की। सम्मुख आन पर उसने पर्दा-घूँघट नहीं किया परन्तु गले में आँचल डाल कर श्वसुर को प्रणाम किया। बातचीत के दौरान में उसने कादर बालसन को भी सम्मिलित किया। और अब ये चारों आदमी दिल खोल कर बातें करने लगे।

राधामोहन ने कहा— 'बेटी तुझे यहाँ प्रसन्न और स्वस्थ देखकर मं बहुत खुश हूँ। मुझे जाति वालों न जो प्रताड़ित किया और मेरा अपमान किया वह सब तुझे देख कर मुझे याद नहीं रहा है। पर मैं चाहता हूँ कि तू मेरे साथ रह और पुत्र की कमी को पूरी कर।"

गुमला ने कहा— आप मेरे पिता हैं पूज्य ह मेरे लिए आप ही वा घर संसार में था, परन्तु मेरे साथ जो घटनाएँ घट चुकीं और मैं जहाँ पहुँच चुकी वहाँ से लौट कर आपकी शरण में आना न आपके लिए श्रेयस्कर होगा न मेरे लिए।'

"म तो तुझे अपनी वही पुत्र-वधू समझता हूँ।"

"वही तो हूँ। बदल कैसे जाऊँगी!"

"यह तो मैंने तभी देख लिया, जब तूने गले में औषध डाल कर मेरी चरण रज ली। पर मैंने सुना कि तू एक अंग्रेज तरुण से ब्याह कर रही है?"

'दूसरी कोई राह नहीं है। परन्तु मेरी आत्मा हिन्दू है। संस्कार हिन्दू है। फिर मैं भारतीय भी तो हूँ। आचार मेरे हिन्दू हैं। विचार से हिन्दू नहीं हूँ क्योंकि हिन्दू-धर्म में एक दोष है कि वह सदा सोया रहता है और जब उस पर वज्र प्रहार होता है, तब जागता है। इसी से आप उस समय मुझ अबोध को जीवित जला देने में सहमत हो गए थे परन्तु अब आप इतने उदार बन गए हैं।"

'बेटी यह मेरा नहीं हिन्दू धर्म का दोष है।

'यही मैं भी कहती हूँ जहाँ शून्य होता है वहीं अवांछित वस्तुएँ अपनी राह बनाती हैं।

'बेटी तू मुझे एक बात सच-सच बता।

"पूछिए।

'क्या तूने ईसाई-धर्म पर विश्वास कर के धर्म-परिवर्तन। करने का निर्णय किया है?

'नहीं तनिक भी नहीं। मेरा धर्म-परिवर्तन तो शुद्ध सामाजिक आवश्यकता पर आधारित है विश्वास तो मेरा हिन्दुत्व पर ही है।

'यह कैसी बात है बेटी?

'स्पष्ट है कि मैं कोई धर्मात्मा स्त्री नहीं हूँ। संसारी स्त्री मात्र हूँ। संसार में रहने के लिए मुझे ईसाई समाज को ग्रहण करना पड़ा क्योंकि दूसरा उपाय न था। पर हिन्दू-संस्कार, आत्म-त्याग तो मेरे रक्त बिन्दुओं में है।

'क्या तेरी य बातें फादर जानते हैं?"

कालेज अब शिक्षा के माध्यम से ईसाई-धर्म का प्रचार कर रहे हैं और यदि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ तो इस समय समूचे भारत में देशी ईसाइयों की संख्या दो लाख तो अवश्य होगी। अभी उस दिन डाक्टर डफ ने गर्वपूर्वक कहा था— जिस-जिस दिशा में पाश्चात्य शिक्षा प्रगति करेगी उस-उस दिशा में हिन्दुत्व के कई अंग टूटते जाएँगे और अन्त में जाकर ऐसा होगा कि हिन्दुत्व का कोई अंग भी साबुत न रहेगा। उनके भाषण से प्रभावित होकर लार्ड साफ्सबरी ने यहाँ तक कह डाला कि जो भी हिन्दू ईसाई परमात्मा का ध्यान करेगा वह ब्रह्मा-विष्णु को सुध भूल जायगा।'

घुमता ने कहा— 'यही तो बात है राय महाशय क्या किया जाय। प्रहार हो रहे हैं पर हिन्दुत्व की नींव नहीं टूटती इसी से ईसाई धर्म प्रचारकों के मनसूबे बढ़ रहे हैं।'

"निस्सन्देह घुमता देवी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रवाह में हिन्दू युवक सभी दिशाओं से मुड़ कर केवल पश्चिम की ओर देखने लगे हैं। उन्होंने जो दृष्टि प्राप्त की है उससे पूरब के संसार में उन्हें केवल दोष ही दोष दिखाई देने लगे हैं।

'परन्तु मैं जानती हूँ कि उनके भीतर धार्मिकता के कोई चिह्न नहीं है। जिन्होंने धर्म परिवर्तन किया है वे सांसारिक कारणों से क्रिश्चियन हुए हैं। परन्तु भारत में सदा से धर्म के साथ एक प्रकार का परिश्रम रहा है। वह न इन नए विचारों के तरुणों में है न अब ईसाइयों में। इसी से भारतीय जनता में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। उल्टे वे घृणा के पात्र बन रहे हैं।

'तो बेटी तू अपने को क्या उस श्रेणी में रखती है। तेरे ज्ञान के नेत्र खुले हुए हैं तू अब अपने पर बस कर रह।' मजूमदार ने कहा।

"रह नहीं सकती पिताजी कारण बता चुकी हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ और भी बातें हैं।' इतना कह कर उसने फादर जामसन की ओर देखा फिर आँखें नीची कर लीं।

पादरी जामसन ने कहा— 'इसी सप्ताह सुभदा देवी का शुभ विवाह कर्नल मकरध्वज से हो रहा है मजूमदार महाशय। सुभदा देवी यही कहना चाहती है।

'क्या यह विवाह सुभदा अपनी इच्छा से कर रही है?' मजूमदार ने पूछा।

इस पर सुभदा ने कहा— 'जी हाँ परन्तु कदाचित् आपको बुरा लगे।'

'नहीं म तो केवल यह कामना करता हूँ कि मेरी बेटी अपने जीवन में सुखी हो। अब तो मेरा इसका पुराना नाता टूट चुका। अब नए नाते से यह मेरी बेटी है।

तो पिता जी आप यदि ऐसी भावना रखते हैं तो अपने हाथ से ही अपनी पुत्री को कन्यादान दीजिए।

'यह तो विडम्बना की बात होगी। क्योंकि मैं तुम्हारे भावी पति को जानता तक नहीं। फिर भी मैं तुम्हारी किसी इच्छा में बाधक नहीं होऊँगा। पर तुम्हें मेरी एक बात रखनी होगी।'

"कहिए।

"यह स्वीकार करो। मेरा दानपत्र है। मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति की तुम्हीं उत्तराधिकारिणी हो। विवाह तुम्हारा शुभ हो। ये पाँच लाख रुपए मैं तुम्हें देता हूँ। अब मैं राय महाशय के साथ उपासना में शेष जीवन व्यतीत करूँगा।'

"आपका यह अनुदान ग्रहण करने में मुझे संकोच हो रहा है। मैं गृहत्यागिनी हूँ।"

"तो इससे क्या ? हो तो मेरी बेटी । मैं तुम्हारे ब्याह में अवश्य उपस्थित होता, परन्तु अभी इतना साहस मुझ में नहीं है ।

"क्या आप एक बार मेरे भावी पति से मिलना पसन्द करेंगे ?"

"न न, उसकी आवश्यकता ही अब नहीं है । मैं केवल तुम्हें आशीर्वाद दूंगा ।

"तो मैं उनसे पूछ कर आपका यह अनुदान ग्रहण करूँगी ।'

"नहीं यह तुम्हें अभी इसी समय ग्रहण करना होगा । इतना साहस और आत्मनिर्भरता तुम में होनी चाहिए ।

"क्या यह रकम मैं धर्म प्रचार में खर्च कर सकती हूँ ।"

"नहीं । मने तुम्हारे मुँह से सुनने के बाद यह निर्णय किया है कि तुम्हारा धर्म से कोई सीधा सरोकार नहीं है ।"

'तो फिर इस धन का म क्या करूँगी ?

'अपने जीवन को सुखी और मन को सन्तुष्ट करने के लिए जो चाहे वही करना ।"

'और यदि मैं यह धन न लूँ ?

"तो मैं इसे राय महोदय को दे दूंगा ।'

'यह अधिक अच्छा है । राय महाराय इस धन से देश की मानसिक दरिद्रता दूर कर सकेंगे ।

'बेटी तुम बड़ी महान् हो बड़ी उदार हो । इस धन की स्वामिनी तुम्हीं हो । अपने हाथ से जिसे चाहे दे सकती हो ।

शुभदा ने वह दानपत्र राय महोदय के हाथ में दे कर कहा—विवाह स प्रथम ही इसकी लिखा-पढ़ी पर लीजिए राय महाशय और विवाह में आप हो मरे पिता का स्थान ग्रहण कीजिए तथा मेरा विवाह हिन्दू रीति स ही कीजिए ।

बड़ी ही सुखी स शुभदा देवी, मे तुम्हारा यह अनुदान और

अनुरोध स्वीकार करूँगा। पर एक कठिनाई है। हिन्दू रीति से तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि तुम कुलीन ब्राह्मण कन्या हो। परिणीता और विधवा हो, धर्मशास्त्र की रीति से तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता।"

'मंने इस बात पर विचार किया है। मेरा गांधर्व रीति से विवाह हो सकता है। मेरे पास प्रमाण है। प्राचीनकाल में ऐसे विवाह सम्पन्न हुए थे जिनमें न जाति-पाँति का विघ्न था न विधवा की रोक-टोक।"

'शास्त्रीय बचन और रोक-टोक हो तो भी मैं तो इसकी परवाह नहीं करता। पर तुम यदि ब्रह्मोसमाज की रीति अपनाओ तो अधिक उत्तम है। हम लोग भी वेद-मंत्रों का उच्चारण करते हैं। हाँ, जाति से ब्राह्मण नहीं मानते।"

'तो यही सही। आप मेरे पिता अभिभावक और पुरोहित सब कुछ बन जाइए।

"मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु क्या फादर और कर्नल मेकडानल्ड इसे पसन्द करेंगे ?"

फादर थामसन ने कहा—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। घुमदा जैसी बेटी पर मैं कोई विचार बलात् नहीं लादना चाहता। उसमें हिन्दू-धर्म और ईसाई-धर्म के तत्त्व को समझने की पूरी सामर्थ्य है। वह अपने लिए जैसा ठीक समझे वैसा कर सकती है।

'किन्तु कर्नल मकडानल्ड ?

"मैंने उनसे बात कर ली है। वे मेरे विचारों की क़द्र करते हैं। वह उदार पुरुष है। बस हमारे बीच में यह तय हुआ है कि हमारे जो बच्चे होंगे, वे क्रिश्चियन होंगे। मैंने यह बात स्वीकार कर ली है।"

अच्छी बात है। मैं तुम्हारा अभिभावक और पुरोहित बनना स्वीकार करता हूँ शुभदा देवी।'

'तो इसी सप्ताह रविवार को मेरे ही मकान पर यह शुभ कार्य होगा राय महोदय, मैं आपको आमंत्रित करता हूँ।"

और यथा समय शुभदा देवी का विवाह अत्यन्त सादगी के साथ सम्पन्न हो गया। विवाहकाल में शुभदा ने भारतीय वधू का वेश धारण किया। कर्नल अपनी पूरी वर्दी में थे, बहुत से अंग्रेज अफसर तथा कुछ भारतीय मित्र इस महत्वपूर्ण विवाह में सम्मिलित हुए।



१४

कर्नल मेकडानल्ड और शुभदा के विवाह से कलकत्ते के भारतीय और यूरोपियन दोनों ही फिर्कों में हलचल उत्पन्न हो गई थी। और अब यह विवाह कलकत्ते में आम चर्चा का विषय बन रहा था। यों तो इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह कलकत्ते और भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में रहने वाले अंग्रेज करते ही रहते थे पर वे साधारण व्यापारी और स्त्रियाँ प्राय नीच जाति की या मुसलमान हुआ करती थीं। यह हम प्रथम ही बता चुके हैं कि उन दिनों तक भारत में बहुत कम अंग्रेज-स्त्रियाँ आती थीं। प्राय अंग्रेज अकेले ही रहते थे। इस कारण प्रथम तो भारत में इन यूरोपियनों के आचरण बहुत ही भ्रष्ट रहते थे दूसरे जैसे ही कोई अंग्रेज औरत विधवा हुई कि उसके बहुत से उम्मीदवार खड़े हो जाते थे। कलकत्ता इस प्रकार की कार्यवाहियों का केन्द्र था। परन्तु उच्च श्रेणी के अंग्रेज अफसर अक्सर अपने को भारतीयों से दूर ही रखते थे। कर्नल मेकडानल्ड

कोई अनाचार नहीं किया। यद्यपि मैकडानल्ड एक ऐसे तरुण अंग्रेज थे, जिन्हें अपनी अंग्रेजियत पर घमण्ड था। निःसन्देह वह भारतीयों को तुच्छ, अछूत और पिछड़ा हुआ समझते थे, परन्तु उनके प्रति उनके मन में जो घृणा थी, वह सुमदा की बातचीत और प्रभाव से बहुत कम हो गई थी।

बरकपुर के उच्च सैनिक अधिकारी बनने के बाद उन्हें एक बढ़िया बंगला मिल गया था। वहाँ वह सुमदा को ले गये थे। बंगले की उत्तम अंग्रेजी ढंग की सजावट करीने से कटी हुई रोसें, सड़कों पर कुटी हुई लाल बजरी और बैरा खानसामा, आया, और अरदलियों की पलटन यह सब देख सुमदा अभिभूत हो गई थी। अब वह इतनी समझदार तो थी ही कि अपने इस भाग्य परिवर्तन को देखे, उस पर विचार करे। चिता पर से अर्धमूर्च्छित अधजली अवस्था में उठाई हुई अबोध बालिका का जीवन कहाँ से कहाँ पहुँच गया था—इसे सुमदा जितना ही विचारती, उतना ही वह गम्भीर हो जाती थी।

नए बंगले में आकर उसने अच्छी तरह घूम फिर कर अपने घर को देखा। सेना के बड़े साहब की बीबी को शुद्ध बंगालिन के रूप में देख कर बरा खानसामा हैरान और असमंजस में थे। सुमदा काशीनाथ को अपने साथ पादरी जानसन के यहाँ से ले आई थी। कभी काशीनाथ सुमदा के उम्मीदवारों में था। परन्तु जैसे वह पादरी जानसन के यहाँ उसके जूते साफ किया करता था—वैसे यहाँ भी उसकी वही ड्यूटी थी। वह सुमदा का खास खिदमतगार होकर आया था। और अब अपनी नई मालकिन और नये घर से प्रसन्न था। उसे इस बात का भी अभास न था कि वह जो कभी सुमदा का उम्मीदवार था सो उसकी उम्मीदवारी टूट चुकी थी।

"तो क्या पर तुम हाथ जोड़ कर प्रणाम तो करो ।'

'मुझे उसकी विधि बताओ ।

घुमक्का ने आडम्बर से ठाकुर को प्रणाम किया । मेकक्वायल्ड ने उस का अनुकरण कर नकली गम्भीरता से कहा— 'बस इतने ही से ठाकुर तुम्हारे ?"

'इतने ही से हैं पर इनसे बड़ा और कोई नहीं है ।

'तब तो हमें उस बड़े ड्राइंग रूम को ठाकुरद्वारा बनाना होगा ।"

'मेरे ठाकुर तुम्हारे जैसे साहब बहादुर नहीं हैं । वे इसी कोठरी में रहेंगे यहीं से हमें चरणामृत देते रहेंगे ।

'यह तो और भी अच्छा है । लेकिन मुझे भी कुछ तुम्हारे ठाकुर के लिए करना होगा ।'

'बस जूता पहन कर कभी मेरे ठाकुरद्वारे में मत घुसना ।

'अच्छी बात है और प्रणाम भी करना होगा ?'

'तुम्हारे प्रणाम के मेरे ठाकुर भूखे नहीं हैं । मर्जी हो करना मर्जी न हो मत करना ।'

"तो घुमक्का देवी मेरी ओर से तुम्हीं प्रणाम कर दिया करो । और देखो मैं घुमक्कड़ आदमी हूँ । जरा ध्यान रखना तुम्हारे ठाकुर मुझ से नाराज न हो जायें । बस प्रसन्न रहें ।"

'हाँ हाँ प्रसन्न रहेंगे । लेकिन अब तुम कहाँ चले ?'

'भूल गई ? इतवार है । मैं गिरजा जा रहा हूँ ।"

अरे ! म तो भूल ही गई थी ।

काफी देर हो गई है । आओ नाश्ता कर लें ।'

अभी मुझे स्नान-पूजा में देर लगेगी । तुम नाश्ता कर लो । नाश्ता टेबुल पर रख दिया गया है ।"

'तो तुम तब तक मेरे पास बैठो ।"

उन्होंने सुमवा का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा। सुमवा उन्हें डाइनिंग रूम में ले गई। वहाँ बैठ कर मेकडानल्ड नाश्ता करने और बातें करने लगे। सुमवा ने कहा— आज तो कई चिट्ठियाँ मिलीं!

"हाँ लन्दन से मेरी छोटी बहन का खत आया था। उसका जवाब लिखा। मैंने शादी की बात तो पहले ही लिख दी थी। उसने तुम्हारे विषय में बहुत-से सवालात लिख भेजे थे। उन सबका जवाब मुझे लिखना पड़ा।

'क्या-क्या सवालात थे ?

'स्वाभाविक है कि उसकी और माँ की उत्सुकता तुम्हारे लिए है। इसी से उन्होंने तुम्हारे सम्बन्ध में सब जानकारी हासिल करने की चेष्टा की। मैंने संतोषपूर्ण जवाब लिख दिया है।

'उन्हें तुम यहाँ क्यों नहीं बुला लेते ?

"बहन का एक तो पढ़ाई का सिलसिला चल रहा है। दूसरे माँ को वह अकेली नहीं छोड़ सकती। कुछ दिनों में छुट्टी लेकर हम विलायत चलेंगे।

'लेकिन क्या वह मुझे पसन्द करेंगी ?

"क्यों नहीं। तुम्हारी जैसी साथिन को वह पसन्द न करेंगी भला!"

'मैं इसलिए कहा—कि प्राय सभी अंग्रेज हम भारतीयों को हीन-दृष्टि से देखते हैं।"

'तुम्हें देख कर कौन भारतीयों को हीन दृष्टि से देखेगा।'

'यह तो तुम चापलूसी की बातें करते हो। खैर, गिरजे से कब तक लौटोगे ?'

"मुमकिन है कुछ देर लग जाय। क्योंकि कर्नेल हिमरर्स और उनकी पत्नी गिरजे में आ रही हैं वे मेरे पुराने दोस्त हैं, वे बड़े भले सिविलियन हैं। मिलोगी तो प्रसन्न होगी।"

नहीं-नहीं मैं अधिक लोगों से मिलना पसन्द नहीं करती। हाँ, उनकी पत्नी यदि किसी भारतीय स्त्री से मिलने में हानि न समझें, तो उनसे जरूर मिलूँगी।"

'वह अभी विलायत से नई आई हैं। नहीं जानता उनका मिजाज कैसा है। सुना है—वे बड़े ठाट की महिला हैं। गिरजे में वह आ ही रही हैं। देखूँगा।'

अच्छा तो अब तुम जाओ। ईसू मसीह से प्रार्थना करो कि वह हम पर कृपा करें। मैं भी ठाकुर से यही अरदास करती हूँ। और तुम अपने मित्र और उनकी पत्नी से भी मिलो। मैं मंच पर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।'

'मैं ठीक समय पर ही लौट आऊँगा।'

मेकडानल्ड घूमवा से विदा लेकर बाहर गए, जहाँ उनका घोड़ा तैयार था। घोड़े पर सवार होकर वह गिरजे की ओर चल गए।

१५

गिरजे में अनेक अंग्रेज स्त्री-पुरुष एकत्र थे। वे या तो सरकारी अफसर थे या व्यापारी जन। पर अधिकांश लोग सनिक अधिकारी और उनके परिजन थे। इन सबका ध्यान केंद्रित था कर्नेल हिमरर्स की मेम साहिबा पर। वह एक अद्वितीय सुन्दरी तरुणी थीं। अभी इंग्लैण्ड से आई थी। स्वास्थ्य की ललाई उसकी गुलाई में चार चाँद

लगा रही थी। उसने अप-टू-डेट फैशन का परिधान पहना था। परिधान आसमानी मलमल का था और उस परिधान में उसका सौन्दर्य और यौवन फूटा पड़ता था। वह एक ऐसी रमणी थी जिसका रूप यौवन समय के अत्याचार से नष्ट नहीं हो सका था। लोगों का अनुमान था कि उस महिला की आयु चालीस बरस की है। इस उम्र में तो भारतीय स्त्रियाँ बुढ़िया हो जाती हैं। परन्तु इस स्त्री पर यौवन का निखार ऐसा था कि अच्छे से अच्छे पारखी भी उसे तीस के भीतर ही समझते थे। पर हकीकत यह थी कि उसकी उम्र बयालीस बरस की थी। कद उसका कुछ लम्बा देह गुलगुदी और कुच पीन थे। कमर ऐसी पतली थी कि वह उसमें कमरबन्द लगाती ही न थी। उसके प्रत्येक अंग इस प्रकार सांचे में ढले थे कि मानों विधाता ने उसे साधन और प्रेम का आस्वादन करने के ही लिए बनाया था। उसके नेत्रों से तीव्र लालसा व्यक्त होती थी। पर उसकी चितवन में धृष्टता और निर्भीकता तथा स्वेच्छाचारिता स्पष्ट दीख पड़ती थी। उसे देख कर मनुष्य का मन हाथ से निकल जाता था। रंग उसका कुछ पीला था। गाल कोमल और गुलाबी थे। होंठ लाल और फूले हुए थे, उनमें ऐसी चमक थी कि जैसे पका हुआ फल रस से लबालब भरा हुआ हो। उसकी गर्दन हंस के समान, कंधे सुडौल और भुजाएँ मृणाल को मात करती थीं। सिर के बाल काले लम्बे और घुँघराले थे। आँखें काली और कटीली थीं। उँगलियाँ पतली और मुलायम थीं। और उनके पोरों पर नुकीले नाखून अजब बहार दिखाते थे। पैर छोटे और खूबसूरत थे। उनमें उसने नए फैशन के जूते पहने थे। सिर पर भी नए फैशन का एक अमरीकन टोप था, जिसमें किसी पक्षी का एक सफेद पर लगा था। उसका देखना, बात करना, उठना-बैठना, सब कुछ नाज-नखरे से भरा था।

जो चुस्त पोशाक उसने पहन रखी थी, उसे लन्दन के पासमास महल्ले के प्रसिद्ध दर्जी ने सिया था। उस पोशाक में उसका जिस्म फूटा पड़ता था। उसकी भुजाएँ और वक्ष का ऊपरी भाग नगा था। और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वह अपने वस्त्रों में समा नहीं रही है। कर्नल हिमरर्स की यह पत्नी आई तो थी गिरजे में उपासना करने के लिए, पर जिस ठाटबाट का उसका प्रदर्शन था वह तो एक नृत्य गोष्ठी के योग्य था। जो हो उन्हें यहाँ देख कर सबकी आँखों में चकाचौंध लग गई।

उपासना की समाप्ति पर सब लोग उठे। सैनिक और अफसर जब चले गए तो कर्नल हिमरर्स पत्नी को बाँह का सहारा दिए बाहर बरामदे में जहाँ मेकडानल्ड टहलते हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, आ गए। मित्र को देखते ही मेकडानल्ड लपक कर मित्र की ओर बढ़े। हिमरर्स ने उनसे हाथ मिलाया और कहा—'मेरी पत्नी से मिलिए। फिर पत्नी से कहा—"ये हैं मेरे मित्र और साथी कर्नल मेकडानल्ड।"

मैडम ने अपनी बत्तीसी की छटा दिखाते हुए अपना हाथ नखरे के साथ बढ़ा दिया जिस मेकडानल्ड ने लपाक से चूम लिया।

मैडम ने कहा— आपकी चर्चा इतनी अधिक मुझ से हिमरर्स ने की है कि आपकी यह पहली मुलाकात मुझे एक सुपरिचित बन्धु की मुलाकात प्रतीत हो रही है।

आपके इस अनुग्रह के लिए धन्यवाद है मैडम। कहिए, हमारा हिन्दुस्तान आपको पसन्द आया ?"

"हमारा ? इसके क्या मान ? ओह ! समझी आपने एक हिन्दुस्तानी औरत से शादी की है न इसी से अब आप हिन्दुस्तानी बन गए हैं।"

"शादी तो जरूर मैंने एक भारतीय महिला से की है। पर मैं हूं एक सच्चा अंग्रेज ही।"

"जान कर खुशी हुई। पर अभी मैं हिन्दुस्तान की बाबत क्या राय जाहिर कर सकती हूँ। जरा देखू तो कहूँ। हाँ आपकी हिन्दुस्तानी बीबी कैसी है?"

"यकीनन आपके समान शानदार नहीं है, आप शायद उससे मिलना भी पसन्द न करें।"

"इन काले हिन्दुस्तानियों से म डरती हूँ। इंग्लैण्ड में मने यहाँ से लौटे हुए आदमियों से यहाँ की औरतो के बहुत अजीब-व-गरीब किस्से सुने है।"

"इन बातो में शायद आपकी अधिक अभिरुचि है। किन्तु मरी पत्नी से डरने की तो कोई जरूरत नहीं है।

"तो फिर उसे लाइए किसी दिन मेरे यहाँ।'

"मैं उससे पूछूँगा, यदि वह पसन्द करेगी तो जरूर लाऊँगा।"

"अच्छा, क्या हिन्दुस्तानी औरतें भी इस कदर मिजाज रखती ह?

"क्यों नहीं औरतें तो सभी मुल्को की एक ही साँचे की बनी होती ह।"

'मुझ यह देख कर प्रसन्नता होती है कि आप अपनी हिन्दुस्तानी पत्नी की इस कदर कद्र करते हैं।

"क्या मेरे दोस्त ह्विटर्स मरे समान भाग्यशाली नहीं ह?

मैडम ने नखरे से एक ठण्डी साँस ली और कहा— खुदा बचाए, उनके जैसा ईर्ष्यालु पति दुनिया में न होगा।

'क्या आप एसा कह कर मेरे दोस्त के साथ अन्याय नहीं कर रही है?"

'तनिक भी नहीं। मैं तो सच से कुछ कम ही कह रही हूँ।'

"तब तो मालूम होता है कि मर्दों के सम्बन्ध में आपके विचार बहुत ही हीन हैं।

'इसका तो यह अर्थ हुआ कि मैं आपको भी वैसा ही समझती हूँ।"

खैर, तो इतना तो मैं भी समझ गया कि मैं एक भाग्यशाली पुरुष हूँ। और आपकी कृपा-दृष्टि इस तुच्छ पर है। मेकडानल्ड ने हँस कर कहा।

'खैर तो आप आज शाम को हमारे साथ डिनर पर आइए, इस मसले पर तभी बातचीत होगी।

इस निमन्त्रण के लिए धन्यवाद। किन्तु आज तो मैं बहुत ही व्यस्त हूँ। फिर कभी आपकी इस कृपा का लाभ लूँगा।

खैर। फिर कभी ही सही। इतना कह कर मिसेज हिअरसे इठलाती हुई अपनी गाड़ी की ओर बढ़ चलीं।

मेकडानल्ड उन्हें सलाम करके अपने घोड़े पर सवार हो अपने घर लौटे।



१६

अफगानिस्तान के युद्ध का भारतीय सैनिकों पर बुरा प्रभाव पड़ा। खास कर बंगाल की देशी सेना में उसकी ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि अंग्रेजों का बढ़ा-चढ़ा रुआब खत्म ही हो गया। और सैनिकों में असन्तोष के लक्षण दीख पड़ने लगे। वे बहुधा आपस में खैबर के दर्रे के कत्ले-आम की चर्चा खूब बढ़ा-चढ़ा कर करते और अंग्रेजों की दुर्दशा पर खुश होते थे। खास कर अवध और बिहार के सिपाही,

जो इस सेना में थे और हजारों की संख्या में कत्ल हुए और जिनके हजारों घराने बरबाद हो गए थे अंग्रेजी सरकार को अपनी बरबादी का कारण समझते थे। यद्यपि साधारण सरकारी कर्मचारियों पर इसका विशेष प्रभाव न था न उनमें ऐसा कोई असन्तोष ही दीखता था। परन्तु अंग्रेजों की श्रेष्ठता और अजेय शक्ति पर जो उनका विश्वास था वह बहुत कम हो गया था। और यद्यपि अंग्रेजी सरकार की अमलदारी का विस्तार बढ़ता जाता था पर सर्वसाधारण का और सरकारी कर्मचारियों का सरकार के प्रति हीन भाव बढ़ता जाता था। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस घटना की प्रतिक्रिया जो उनके मस्तिष्क पर पड़ी थी, बड़ी प्रबल थी। दिन बीतते जाते थे और इन विचारों की पुष्टि होती जाती थी। साधारणतया बंगाल इन्फैन्टरी के सिपाही भारत ही में युद्ध के लिए उपयोग में लाए जाते थे और प्रायः उनकी नियुक्ति उसी प्रान्त में होती थी जिसके वे निवासी होते थे। परन्तु जब उन्हें अफगानिस्तान की लड़ाई पर भेजा गया था, तब उनमें उत्साह और प्रसन्नता की भावना न थी, क्योंकि उनके संस्कारों और स्मृति में वह पुरानी बात कायम थी, जब कि मुगल बादशाह अकबर के काल में महाराज मानसिंह के नेतृत्व में राजपूतों ने अटक पार कर के काबुल के दुर्दान्त पठानों का मानमर्दन किया था। वह बात व भूले न थे। वे समझ रहे थे—अब हमें भी वही प्रसिद्ध सुअवसर प्राप्त हो रहा है। यद्यपि इस प्रकार भारत से बाहर देशी सेना को ले जाने के अवसर कभी-कभी ही आए और उसका पुरस्कार भी उन्हें दिया गया।

जब सन् १८४३ में सिंध अंग्रेजों की अमलदारी में आया तब यह निश्चय किया गया कि सिंध के संरक्षण का कार्य देशी सेना से कराया जाय। उस समय पंजाब की सीमा पर जो सेना नियुक्त थी उसी

को सिंध पर नियुक्त कर दिया गया। परन्तु ६४ नम्बर की पल्टन जब कूच करने लगी तो उसने तनखाहे-जंग का तकाजा किया और बगावत पर आमादा हो गई। उस समय उस सेना के अध्यक्ष कर्नल ने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उनस कुछ वादे किए। परन्तु जब वे सिंध पहुँचे तो उन्हें ज्ञात हो गया कि उन्हें धोखा दिया गया है और वे वायदे पूरे नहीं किए जाएँगे। तब उन्होंने फिर बगावत की। तब उन्हें लखनऊ से बाया गया और सेना को बरगलाने के अपराध में कुछ व्यक्तियों को सजाएँ दी गई।

परन्तु इसी प्रकार का विद्रोह ३४ नम्बर की पल्टन ने भी किया जो पंजाब की सरहद पर तैनात थी। वहाँ भी सैनिकों को सजाएँ दी गई। इन बातों से सैनिकों में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ दिली नाराजी और विरोधी भावना का विकास होता गया। और उनके दिलों में नमकहलाली वफादारी और सैनिक निष्ठा की भावना खत्म विचल हो गई। इस सेना के रंग-ढंग देख कर उसे मेरठ भेज दिया गया जहाँ परड में उनकी वर्दियाँ उतरवा ली गई तथा सैनिकों और उनके देशी अफसरों का अत्यन्त अपमान किया गया। यहाँ तक कि अपराधी और निरपराधी का भी विचार नहीं किया गया क्योंकि अभी तक अंग्रेज अपनी धाग में थ और भारतीयों स पूरे दबाव और रुआब स पश आते थ। इसका परिणाम यह हुआ कि इस समय सेना का जो यह साधारण असन्तोष था वह भावी विद्रोह का मूलाधार बन गया। पर इस समय के अफसरों ने इस बात पर दूरदर्शिता स विचार नहीं किया और यही निश्चय किया कि इनी सेना के साथ सख्त कदम उठाने और कड़ा व्यवहार करने की ही आवश्यकता है। उस समय उनकी दृष्टि सैनिक अनुशासन पर ही थी। वे नहीं जानते थे कि भारतीयों में भी आत्मसम्मान का भाव जागृत हो सकता है। वे

उन्हें अतिशय दीन-हीन, नगण्य समझते थे और अब तक भारतीय जन भी धरमन्ता दम्भ और पोप की भाँति अंग्रेजी अमलदारों का सब प्रकार का क्रूर अन्याय मूर्ख और अनियमित शासन मान्य करते आए थे। असल बात यह थी कि शताब्दियों तक मुसलमानों के अत्याचार सहते-सहते उनमें प्रतिक्रिया की शक्ति ही न रह गई थी। फिर अंग्रेजों को तो वे दवी-शक्ति-सम्पन्न एक समर्थ और अभय जाति मान चुके थ। और इसी भावना की समाप्ति काबुल के युद्ध के परिणाम को देखकर हो चुकी थी। उनका स्वप्न टूट चुका था और उनमें अपने आत्म-सम्मान के भाव जागृत हो गए थे।

१४ नम्बर की पल्टन को तोड़ दिया गया और उसके सिपाही और अफसर पदच्युत होकर अपने-अपने घर चले गए। इस पल्टन के साथ जो सुलूक किया गया उसका दूसरों को पता ही न लगा। न दूसरी सेनाओं में उसकी कोई प्रतिक्रिया ही हुई न उसकी कोई चर्चा हुई।

परन्तु उस पल्टन का एक सूबेदार मजर जो वास्तव में पल्टन के विद्रोह का नेता था और जिसे अधिक अपमानित किया गया था, चुपचाप घर जाकर नहीं बैठा। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने का पेशा अपना लिया। वह आदमी कान्यकुब्ज ब्राह्मण था और बलिया जिले का निवासी था। वह सैनिक जीवन अपनाने से प्रथम कथावाचन और पुरोहिताई का काम करता था। यह काम उसके घराने का पुश्तैनी पेशा था। उसने संस्कृत पढ़ी थी और संस्कृत के श्लोक मधुर स्वर से पढ़ता था। कथा-वार्ता पुराण-वाचन में वह पटु था। उसका पिता अपने प्रान्त का प्रसिद्ध ज्योतिषी और कथा वाचक था। उसने यह काम अपने पिता से सीखा था। परन्तु वह किशोर वय में ही घर से भाग कर कम्पनी की सेना में भरती हो

था और अपनी वीरता साहस तथा प्रतिभा के कारण उन्नति करके सूबेदार मेजर बन गया था। सेना में सभी लोग उसे पाण्डे के नाम से पुकारते थे और उसे अपना अफसर ही नहीं नेता भी मानते थे। उसका नाम गोपाल था। कुछ लोग उस गोपाल महाराज कहते और बहुत अधिक गोपाल पाण्डे कहते थे। सेना में भी वह पूरी ब्राह्मणोचित निष्ठा से रहता। नित्य सन्ध्या-वन्दन करता, तिलक-छाप लगाता स्नान-पूजा यथाविधि करता और अवकाश में कथा-वार्ता कथा-वार्ता से सैनिकों का मनोरंजन करता रहता था। वह किसी स दान-दक्षिणा नहीं लेता था। कोई देना चाहता भी तो कहता था कि अब हमने सेना में सिपाही होकर ब्राह्मण धर्म त्याग दिया क्षत्रिय धर्म अपना लिया इससे हम दक्षिणा के अधिकारी नहीं रहे।

परन्तु उसमें अति उग्र ब्राह्मणत्व था। वह अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता था। आर्य संस्कारों का वह समर्थक और प्रशंसक था। अपनी सेना में वह केवल वीरत्व ही नहीं—निष्ठा धर्म और आचार सम्बन्धी उपदेश भी देता रहता था। बहुधा वह तीखी भाषा का प्रयोग करता। थोड़े दोष पर भी वह सैनिकों की लानत-मलामत करता। उन्हें उपदेश देता और उन्हें निरन्तर उद्दीपन देता रहता था। इसी से सब सैनिक छोटे-बड़े उसका आदर करते उसकी बात आदर से सुनते और उसकी आज्ञा मानते थे। सेना पर उसका काफी प्रभाव था। इसी से जब उसने सेना में विद्रोह की आवाज उठाई, तो अंग्रेज अफसरों ने उसी के साथ कड़ी-से-कड़ी कार्यवाही की और उसी को सेना में अनुशासन भंग का सबसे बड़ा दोषी समझा। परन्तु यह पुरुष उन लोगों से भिन्न था जो पेट के लिए दासता करते हैं। वह उन लोगों में भी न था जो अपने को अंग्रेजों का नमकख्वार समझते थे। बल्कि वही पहला व्यक्ति था जिसने सैनिकों के दिलों में यह

भाव पैदा किया कि वे किसी का नमक नहीं खाते, वे अपना खून बहा कर कर्त्तव्य-पालन करते हैं। इस प्रकार उसने सैनिकों में कर्तव्य-निष्ठा और आत्मसम्मान के भाव भर दिए थे और यही कारण था कि वे अपने अधिकारों और प्राप्तव्यों के लिए विद्रोह करने को आमादा हो गए। अंग्रेजों ने ठीक समझ लिया था कि यह ब्राह्मण ही सब फसाद की जड़ है और इसी से उसे सबसे अधिक दण्ड दिया गया।

परन्तु इस प्रकार अपमानित होकर वह सब लोगों की भाँति घर नहीं लौटा। उसने सोचा—इन विदेशियों के लिए हम भारतीय अपना खून बहाते हैं। अपना घर-बार छोड़कर देश-विदेश में मारे-मारे फिरते हैं और जान जोखिम में डालते हैं। हमारी बदौलत ये विदेशी राज्य पर राज्य जय किए जाते हैं और हमीं को अपना गुलाम समझते हैं। ये म्लेच्छ, कुमार्गी शराबी झूठे और कायर विदेशी हम ब्राह्मणों तक की आन नहीं मानते। हमें काला और अछूत समझते हैं। भला किस बात में हम कम हैं। हमें आत्मबोध होना चाहिए। उसने प्रण किया कि वह देश भर में घूम-फिर कर सैनिकों को उद्दीपन देगा। उनमें आत्म-सम्मान के भाव भरेगा। उनके मन से दासता के भाव दूर करेगा और उन्हें वीर संमानी बनाने की चेष्टा करेगा। वह अब सैनिकों का पुरोहित बनेगा। यह ठान कर वह मेरठ से निकला। उसने अपने घर का रास्ता नहीं लिया, वह वहाँ से बुन्देलखण्ड गया। वह पण्डितों की भाँति एक रामनामी दुपट्टा कंधे पर डाले लुटिया डोर झोले में रखे, गीता रामायण और महाभारत की पोथी बगल में दाबे एक लाठी हाथ में लिए सैनिकों में घूमने लगा और असाधारण धैर्य और असीम तत्परता से वह सेनाओं में घूमता-फिरता रहा। कभी-कभी जब सेना के अंग्रेज अफसरों का ध्यान उसकी ओर जाता, तो वह बुन्देलखण्ड में जंगलों तथा बंगा-

जमुना के खादरों में अन्तर्ध्यान हो जाता और फिर निकल कर अपना काम करता। सेनाओं में उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था और सर्वत्र उसका मान और उसकी चर्चा होती थी। वह कथा-वार्ता करता, कीर्तन करता और अवसर पाकर अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिकों को भड़काता। उसके उच्चारण किए संस्कृत के श्लोक बड़े प्रभावशाली होते थे। उसके प्रयास का परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण भारत की देसी सेनाओं में अंग्रेजों के प्रति असंतोष की आग सुलग गई और जगह-जगह छोटे-बड़े उपद्रव और सैनिक विद्रोह तथा अनुशासन भंग की घटनाएँ होने लगीं। अंग्रेज भी यह समझ गए कि भारतीय सिपाही अब उनके नमकहलाल दास नहीं रहे, आत्मसम्मान से भरपूर सैनिक बन गए हैं।

सन् १८५१ बीत रहा था। अब वह पंजाब में घूम रहा था। अभी वहाँ आए उसे एक मास ही हुआ था कि पंजाब की सारी सेना अनुशासनविहीन हो गई। इस समय इस पुरुष को पकड़ने की बहुत चेष्टाएँ की गईं—पर वह न पुलिस के हाथ लगा, न सैनिक अफसरों के। बड़ी कठिनाई से सेना को काबू में किया गया।

वह दो बरस तक दिल्ली, अम्बाला, मेरठ, सहारनपुर के सैनिक-केन्द्रों में घूमता रहा, लोगों को उत्तेजित करता रहा, उन्हें साहस दिलाता रहा और सेना में बगावत का सूत्रपात करता रहा।

सारा का दिन अंग्रेजों से फिरते जाते थे। वे दिन से अंग्रेजों के विद्रोही होते जाते थे। लोग उसकी बातों से प्रभावित होते, उससे सहमत होते, पर वे संकोच और द्विविधा में पड़ जाते। अब तो सिपाहियों का रुख देखकर उसने पंजाब के सिपाहियों को सलाह दी कि उनकी तनख्वाहें बहुत कम हैं, जबकि गोरे सिपाहियों की बहुत अधिक है। उन पर बाल-बच्चों का भार है और अंग्रेज सिपाही

अकेले हैं। वे विदेशियों के लिए लड़ते हैं, जबकि अंग्रेज अपना राज्य फैलाने को लड़ते हैं। इसलिए तनख्वाह उन्हें अंग्रेजों के बराबर ही मिलनी चाहिए। उसने सिपाहियों को सलाह दी कि वे मिल कर संगठित रूप में अपनी तनख्वाह बढ़ाने की इच्छा प्रकट करें और यदि सफलता न मिले तो संगठित विद्रोह करें।

कुछ लोग कहते थे—कि हमने कम्पनी बहादुर का नमक खाया है और हमें अपनी नौकरी पसन्द है। नमक का हक अदा करना हमारा धर्म है। जहाँ तक बन पड़ेगा, हम नमकहरामी नहीं करेंगे। पंजाब का वातावरण बड़ा विचित्र था, सिक्ख युद्ध के बाद सिक्खों में बुरी तरह अंग्रेजपरस्ती घुस गई थी, वे उन्हीं का गीत गाते थे। दूसरे के सुख-दुःख से उन्हें सरोकार ही नहीं था। इसका प्रभाव भी पंजाब की देशी पल्टनों पर पड़ा और धीरे-धीरे पंजाब में तैनात पल्टनों की उत्तेजना समाप्त हो गई। रेजीमेण्ट पर रेजीमेण्ट बदस्तूर आतीं और चली जातीं। ६६ न० की पल्टन की वर्दी उतरवा ली तो उसके बाद तो एक प्रकार का आतंक-सा सेना पर छा गया और वे इतने डर गए कि विद्रोह की भावना एक प्रकार से दब ही गई।

गोपाल पाण्डे पंजाब से निराश होकर लौटा और फिर उसने दिल्ली, मेरठ, आगरा अम्बाला, सहारनपुर की छावनियों में चक्कर लगाया। उसे यहाँ सर्वत्र अनुकूल वातावरण मिला और उसे प्रसन्नता हुई कि यहाँ विद्रोह की भूमिका तयार है और लोग विद्रोह की बातें करते और चाव से उसकी बातें सुनते हैं। उसके पुराने दोस्त यहाँ सेना में थे उन्होंने उसकी खूब आवभगत की। कथा-वार्ता कराई। नए लोगों से परिचय कराया और जहाँ-तहाँ सभाएँ करके विद्रोह का परामर्श किया। यहाँ की सेना को उसने इतना सजग कर दिया कि बस ज्यों ही एक चिनगारी फूस में गिर

कि आग भक से जल उठे। कुछ लोग तो उससे भी अधिक अधीर हो रहे थे और अंग्रेजों के विरुद्ध सब कुछ कर गुजरने पर आमादा थे। यहाँ उसने हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों को अधिक उत्तेजित पाया। वे चाहते थे कि मुसलमानों का खोया हुआ राज्य फिर मिल जाय। और उनकी जो दुर्दशा इन पिछले पचास वर्षों में हुई है, उसका बदला अंग्रेजों से ले लिया जाय। दिल्ली दरबार यद्यपि षड्यन्त्रों का घर बन गया था, शाहजादे अमीर-उमरा और शाही रिश्तेदार सब अपनी अपनी खिचड़ी पका रहे थे परन्तु बादशाह के प्रति सबको श्रद्धा थी। और अंग्रेज बात-बात पर बादशाह का अपमान करते और उन्हें पदच्युत करने की कल्पना कर रहे थे, यह उन्हें खल रहा था। उन्होंने अपनी उत्तेजना को धर्म का रूप दिया हुआ था और उनके मौलवी मस्जिदों में वाज करके लोगों को उत्तेजित करते फिर रहे थे। अब गोपाल पाण्डे ने भी धर्म का ढकोसला उठा लिया और वह भी अंग्रेजों पर अनेक प्रकार के धर्म विरोधी आरोप लगाने लगा। उसका यह नया हथियार अधिक कारगर हुआ और लोग जो प्रायः धर्मभीरु थे, बहुत सजग हो उठे। गोपाल के संस्कृत के श्लोक, गीता के प्रमाण और भगवान् के वाक्य इसमें बहुत सहायक सिद्ध हुए। वह बारम्बार ईसाइयों के हथकण्डों का बढ़ा चढ़ा कर जिक्र करता और सीधे-सादे सिपाही जोश और जनून में भर जाते। अब उसके बहुत-से समर्थक भी जगह-जगह उत्पन्न हो गए थे। सिपाही, जो बाजारों में जाते या छुट्टियों में घर जाते—वहाँ से बहुत उत्तेजनामूलक बातें साथ ले आते थे। वे यहाँ मनों में आग में घी का काम देती थीं।

वेतन की कमी भी एक भारी असन्तोष का कारण बनी हुई थी। अब इसमें जो धार्मिक क्षति की भावना जुड़ गई, तो उसने विद्रोह को प्रगति दी। हिन्दुस्तानी रजीमेण्ट में प्रायः ऊँची जाति के हिन्दू

थे, पर पेट के लिए, विदेशियों के लिए खून बहाते थे। पर अब जब पेट भरने में भी कोताही होने लगी तो उनके मिजाज बिगड़ गए।

सन् १८२४ में बैरकपुर में जो नृशंस हत्याकाण्ड हुआ था, उससे बच कर जो लोग भाग गए थे, वे अब भी गाँव-गाँव घर घर जाकर अंग्रेजों के प्रति घृणा और बगावत का प्रचार कर रहे थे।

वहाँ भी गोपाल पाण्डे वाला लोग उस गिरोह में मिल कर उसकी योजना के अनुसार सगठित रूप में अंग्रेजों के विरुद्ध ग्राम जनता और नवाबों में प्रचार करने लग जाते। यह आश्चर्य की बात थी कि ये लोग प्राणपण से इस काम में जुटे हुए थे। इन विद्रोही प्रचारकों में कुछ भाग तो ३४ न० की पलटन के थे और बाकी ६६ न० पलटन के जो बाद में बर्खास्त कर दी गई थी। वे लोग जोगी बैरागी, किसानी पण्डे भड्डरी ज्योतिषी साँपवाले, बाजीगर मदारी नाच-तमाशे वाले बन कर सब तरह के लोगों में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह-भावना जागृत कर रहे थे। वे राजाओं-नवाबों के दर्बार में जाते और अपना काम करते। उनके नौकरों और प्रजा में विद्रोह फैलाते। धीरे-धीरे इन लोगों का एक बड़ा मजमा बनता चला गया जिसका सरदार गोपाल पाण्डे था। लोग पिछली बातों को भी याद करते थे और ताज रंग और क्रोध के कारण भी उत्पन्न होते जाते थे जिससे उत्तेजना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती थी।

जब गोपाल पाण्डे बंगाल में गया तो उसने देखा कि वहाँ सब से ज्यादा उत्तेजना और विद्रोह फैला हुआ है और अराजकता के बादल बंगाल में छाए हुए हैं। असल बात यह थी कि बंगाल ही में अंग्रेजों की राजधानी थी और वहाँ नवाबों और रिआया पर सब से ज्यादा जुल्म किए गए थे। फलस्वरूप बंगाल के सब पुराने घराने तबाह हो चुके थे और नए-नए उत्पन्न होते जा रहे थे जिन्हें हिन्दू

नीच जाति का समझते थे और उनसे घृणा करते थे। वे नए राजा-रईस, पुरानी हिन्दू प्रथा और हिन्दू-धर्म के भी विरोधी बन गए थे। खासकर ब्राह्मण समाज ने पुराने ब्राह्मण-धर्म पर कुठार चलाया था। यद्यपि इसने बंगाल में नया जीवन दिया था परन्तु रूढ़िवादी कट्टर हिन्दू इसके विरुद्ध थे और इसका कारण अंग्रेजों ही को समझते थे। बंगाल में ही ईसाई मिशनरी भी बड़ा जोर बांधे थे। इस कारण बंगाल में सब की यह राय थी कि अंग्रेजों को जो इस सब अधर्म और उत्पात के कारण हैं देश से निकाल दिया जाय और धर्म को नष्ट होने से बचा लिया जाय। अब जावजा ऐसी भविष्यवाणियाँ की जा रही थीं कि समूचे देश में एक ऐसा विप्लव किया जाय जो अंग्रेजों का तख्ता ही उलट दे।



१७

सन् १८२४ में बैरकपुर में ४७ नं० पल्टन का जो कत्लेआम हुआ था उस घटना को पाठक भूले न होंगे। उस समय यह कत्लेआम केवल इसलिए हुआ था कि सिपाही अपनी तनख्वाह बढ़वाना चाहते थे। केवल चार रुपए या साढ़े छह रुपए माहवार में उनकी तथा उनके बाल-बच्चों की गुजर नहीं होती थी तथा समुद्र-यात्रा करने से उन्हें धर्म भ्रष्ट होने का भय था। ये सब उच्च कुलीन पूर्व के ब्राह्मण थे। न तो इनमें किसी प्रकार का अंग्रेजों से विद्वेष था, न किसी प्रकार के विद्रोह की भावना। ऐसे भी कठिन अवसर आए कि युद्ध-क्षेत्र में राशन कम हो गया और उन्होंने स्वयं माँड़ पी कर चावल गोरों को

दे दिया। वे न शराब पीते थे न गोरे सिपाहियों की भाँति आवारागर्द थे। वे सभ्य शिष्ट और अनुशासनप्रिय सैनिक और सीधे-सादे धर्मभीरु सद्गृहस्थ थे। साधारण कुलियों से भी उनके वेतन कम थे, यही आवाज उठाने पर उन्हें गोलियों से भून दिया गया था।

आज उन बातों को तीस बरस बीत चुके थे। परन्तु सिपाही उस घटना को भूले न थे। यद्यपि जिन लोगों ने यह घटना आँखों से देखी थी उनमें बहुत कम लोग अब जीवित थे पर वह नृशंस कत्ले आम लोगों के मुखों पर तैर रहा था। और अब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हो रहा था कि क्या कारण है कि हम चार रुपए या साढ़े छह रुपए माहवार पर इन विदेशियों के लिए अपने प्राण दें। उनके मन में अब गोरों और साहब लोगों की पुरानी भक्ति न रह गई थी। वे उनके मालिक हैं नमकख्वार हैं, यही भावना अब इस नई पीढ़ी के तरुणों में न थी—वे अब यह भी समझते थे कि हम ब्राह्मण हैं। धर्मनिष्ठ हैं। हम नौकरी करते हैं, अपना खून देते हैं। पर गुलाम नहीं हैं। धर्म नहीं देंगे। बहुधा ऐसी चर्चा भी होती थी कि अब यदि कोई ऐसी घटना घटे तो हमें वीरतापूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए तथा धर्म की रक्षा तो हर तरह हमें करनी ही चाहिए।

ऐसे ही वातावरण में गोपाल पाण्डे एक दिन घूमता-फिरता बैरकपुर की छावनी में आ पहुँचा। रामनाम का दुपट्टा ओढ़े तिलक छाप माथे पर लगाए और लम्बी चोटी सिर पर फटकारे गाढ़े की मिर्जई और मोटा चमरौधा जूता पहने, टट्टू पर सवार, लोटा डोरी और सत्तू की पोटली झोले में रखे हुए गोपाल पाण्डे ने छावनी में जा कर पूछा—इन सिपाहियों में कोई पाण्डे भी है ? सिपाहियों द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर उसने बताया—कि कभी तुम ने नाम सुना हो मैं गोपाल पाण्डे हूँ। मैं सिपाहियों का पुरोहित हूँ।

सिपाहियों में धर्म-चर्चा करना और कथा-वार्ता करना मेरा पेशा है। गोपाल पाण्डे का परिचय सुन कर बहुत से सिपाही उसके चारों ओर आ जुटे। उसके नाम की ख्याति वे सुन चुके थे और उन्होंने कई बार उसे बुलाया भी था। उन्होंने उसकी बड़ी खातिर की और उस मंगल पाण्डे के डेरे पर ले गए। मंगल पाण्डे ने गोपाल को अपने यहाँ डेरा दिया।

गोपाल ने पूछा— कहाँ के पाण्डे हो जवान ?"

"हम बलिया जिले के हैं महाराज।

'कौन आस्पद कौन गोत्र ?

'ब्रह्म आस्पद और शाण्डिल्य गोत्र।

अच्छा तो बीस बिस्वे के पाण्डे हो छत्तीस घरों के मुखिया हो। घर पर क्या-क्या होता है ?

'जिजमानी पुरोहिताई है महाराज। आस-पास सब ठाकुर, क्षत्रिय वैश्य सुनार हमारे ही जिजमान हैं।"

'तो तुमने बीस बिस्वे के पाण्डे हो कर क्षत्रिय-धर्म काहे को अपनाया काहे को तलवार पकड़ी ?

'यह भी इज्जत का काम है पाण्डे जी। ब्राह्मण का धर्म भी तलवार पकड़ने का है। आप तो सब धर्म-शास्त्रों के पण्डित हैं नहीं जानते द्रोणाचार्य ने भी महाभारत में युद्ध किया था।

"किया था। पर वे तो कौरव-पाण्डवों के गुरु थे। राजा और राजकुमार उनके पैर पूजते थे क्या ये अंग्रेज तुम्हारे भी पैर पूजते हैं ?"

'नहीं पूजते। पर यह तो महाराज कलियुग है। यहाँ धर्म-कर्म का निबाह होना मुश्किल है।

तो यों कहो, बीस बिस्वे के पाण्डे हो कर रोटी के एक टुकड़े के लिए तुम ने फिरंगियों की गुलामी की है। धर्म-कर्म रहे चाहे जाय।

'ऐसा न कहो महाराज गुलामी हमने नहीं की है। हमने खून बेचा है धर्म नहीं।

"और यदि धर्म जाय ?'

'प्राण भले ही जाय पर धर्म न जाय महाराज।

'यह किस का कौल है ?

मगल पाण्डे का कौल है महाराज दुहाई इन चरणों की —उसने पापास के चरण पकड़ कर शपथ ली।

अच्छी बात है पाण्डे म भी बीस बिस्वका पाण्ड हूँ। याद रखना हम भले ही काम क्षत्रिय का करें—पर हैं ब्राह्मण। और ब्राह्मण हिन्दू-धर्म का मालिक होता है। वह न तो खुद धर्म से डिगेगा न दूसर किसी को डिगने देगा। समझे!

खूब समझ रखा है महाराज। हम एसे नमक हलाल चाकर नहीं हैं। बीस बिस्वे के पाण्डे हैं। हमारे बाप-दादा ने धर्म पर चढ़-चढ़ कर जानें दी। समय आवेगा तो हम भी दिखा देंगे कि पाण्डे में कितना दमखम है।

'जीते रहो मगल, जीते रहो भैया। ब्राह्मण का एसा ही करना चाहिए। अच्छा आज रात हमारी महाभारत कराव। सब छोटे बड़े सिपहियन को बुलाव। आज एकादशी है। हमारा निर्जल व्रत है। पवित्र दिन है—आज हम सबन का गीता का महाज्ञान बतावें जो भगवान् ने अर्जुन को बताया था।'

"धन्य भाग हमारे महाराज में सब बन्दोबस्त कर दूंगा। निर्जल व्रत तो हमारा भी है। फिरंगियों की नौकरी करते हैं। मूल धर्म-कर्म तो हमारे साथ ही है।"

'यही बात है पाण्डे मगर एक बात और है ।'

'वह कहो महाराज ।'

'देखो विश्वास की बात है पाण्डे हमारे तुम्हारे बीच गया है ।

"अरे महाराज यह क्या कहते हो। मगन के प्राण आपके हैं।

'तो देखो जो अपने खास आदमी हैं, उनको कथा-वार्ता के बाद फलाहार के बहाने रोक लेना । मुझे उनसे एक भेद की बात कहनी है । देखना—ऐसे आदमी हों जो एक जान दो कालिब हों। बात फूटी तो जान नहीं बचेगी ।

'महाराज आप नेक चिन्ता न करें आपका मतलब मैं समझ गया। मैं ऐसा बन्दोबस्त करूँगा कि किसी को कानोकान खबर न पड़े ।

'तो मगन भैया ऐसे भरोसे के कितने आदमी हैं तुम्हारी पल्टन में ?'

आदमी तो बहुत हैं। पर आठ ऐसे हैं जो जान जाय पर जबान नहीं हिला सकते ।

सब ब्राह्मण हैं ?

छह ब्राह्मण हैं दो क्षत्रिय हैं ।

'कोई हर्ज नहीं । तुम उन्हें जाकर कह दो । आज एकादशी है । महाभारत की कथा-वार्ता होगी । गीता का ब्रह्मज्ञान होगा । सबके पीछे फलाहार होगा। उन्हें फलाहार के लिए रोक लेना । कथा-वार्ता में सब को बुलाओ ।

"मै सब बन्दोबस्त कर लूँगा महाराज ।

"तो मगन मैं गंगास्नान का जाता हूँ। वहीं सन्ध्या-वन्दन कर तीसर पहर तक लौटूँगा । हाँ कथा-वार्ता की बात अफसर से कह देना । गुप्त मत रखना ।

"नहीं महाराज, अफसर हमारे बहुत अच्छे हैं। उनकी मेम साहब ब्राह्मण की बेटी हैं। बंगालिन हैं। साहब की मेम हैं जरूर, पर धर्म कर्म में ब्राह्मण हैं। देवी रूप हैं। ब्राह्मण को बहुत मानती हैं।"

"अच्छा देखूँगा इस ब्राह्मणी को भी। तुम मेरे आने की बात उसके कान में भी डाल देना।"

'जरूर महाराज।

गोपाल पाण्डे अपने टट्टू पर सवार हो गंगा को चल दिए। और मंगल पाण्डे अपने बन्दोबस्त में जुट गए।



१८

कथा-वार्ता का प्रोग्राम बड़ा प्रभावशाली रहा। ३४ नम्बर पल्टन के सब सिपाही, जमादार, हवलदार, देशी अफसर आए, सबके बीच आसन पर तिलक-छाप लगाए, रामनामी ओढ़े गोपाल पाण्डे ने बड़ी मार्मिक शैली में प्रवचन किया। महाभारत के उद्योग पर्व से कुछ वर्णन किए। अभिमन्यु के रणस्थल में अभियान का ओजपूर्ण वर्णन किया। अन्त में गीता के कर्मयोग, ब्रह्मज्ञान और अनासक्ति योग का वर्णन हुआ। सुन कर दर्शक, श्रोता मुग्ध हो गए। बारंबार वे धन्य कहते। कुछ की आँखों से आनन्दाश्रु बह चले। कुछ भावावेश में 'राधागोपाल' 'राधागोपाल' कह कर भाव पीड़ित हो गए, कथा समाप्ति पर भगवान् का पूजन हुआ, चरणामृत बँटा और अपनी अपनी हैसियत के अनुसार दक्षिणा दे-देकर सब सिपाही गोपाल पाण्डे को नमस्कार-प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गए। मंगल पाण्डे ने केवल उन्हें ही रोक लिया जिन्हें धारण करना था तथा जिन्होंने

व्रत किया था। वे कुल जमा आठ आदमी थे तथा सभी की आयु ४० से ऊपर थी।

जब बाहरी सब लोग चले गए, और वे आठ आदमी तथा मगल और गोपाल कुल दस आदमी रह गए, तो भीतर के भाग में गोपाल ने उन्हें ले जाकर बात की।

गोपाल पाण्डे ने कहा—

'सब सिपाही हैं ? या कोई अफसर भी ?

'चार सिपाही हैं दो हवलदार और दो सूबेदार।

'और मगल तुम्हारा क्या दर्जा है ?

'मैं तो एक सिपाही हूँ पाण्डे जी।

अच्छा तो इन सब के नाम बताओ। इनका परिचय दो।

पाण्डे ने सब का नाम विवरण सहित सुना दिया।

कुछ देर मौन रह कर गोपाल ने कहा— 'पाण्डे मने कहा था कि मुझे कुछ गुप्त बात कहनी है वह इनके सामने कहूँ ? इन पर विश्वास करूँ ?

'अमर कहा महाराज।"

अच्छा तो सब कोई गंगा-जल छू कर कसम खाएँ कि बात गुप्त रखेंगे और तन-मन म एक रहेंगे। पाण्डे ने गगा जल की शीशी निकाल कर आगे रख दी। सब ने गगा जल छू कर कसम खाई। वातावरण अत्यन्त गम्भीर हो गया।

धीरे-धीरे गोपाल पाण्डे ने कहना आरम्भ किया—भाइयो ! तुम यहाँ नौकरी करने आए हो और म तुम्हारा धर्म तुम्हें यहाँ बचाने आया हूँ। तुम जानते हो धर्म नौकरी से बड़ा है। तुम्हें तनख्वाह का लालच है पर मुझे किसी बात का लालच नहीं है। मैं तुम्हें भाई समझ कर धर्म की राह दिखाने आया हूँ। अरे देखो—

ये फिरंगी तुम्हारे ही मुल्क में तुम्हारे मालिक बने बैठे हैं और तुम अपने ही घर में उनके गुलाम हो। ये तुम्हें चार रुपल्ली देते हैं और तुम्हारा खून लेते हैं भला कहो—यह कैसा सौदा है? ऐसा लूट रहा है। रई, तम रेसम सब विलायत ले गए। तुम्हारे पल्ले क्या पड़ा? देखो तो वे जुलाहे जिनके बनाए महीन वस्त्र देश-देश में सरनाम थे अब अपने हाथ के अँगूठे कटवा-कटवा यहाँ-वहाँ मिहनत मजूरी करके पापी पेट की ज्वाला बुझा रहे हैं। उनके घर-बार सब उजड़ गए। गाँव वीरान हो गए। पुराने रईस मिट्टी में मिल गए। सूबा की हवेलियाँ कलकत्ते में आकाश चूमती हैं और ये फिरंगी, जिन्हें न सूअर से परहेज है न गौ माता से—जो न हिन्दू न मुसलमान, बड़ा मजे से बंगलों में रहते घोड़े पर सवार हो कर सैर करते और मौज-मजा करते हैं। उनके घर रोज दिवाली रहती है। किसकी बदौलत? तुम्हारी भाई की तलवार की बदौलत। मुल्क तुम जीतते हो पर राजा वे होते हैं। यह कैसी बात! मुल्क तो हिन्दुओं का है मुसलमानों का है ये कौन न तीन में न तेरह में। भाइयो! आँखें खोलो चेतो। अभी भी समय है। इन गोरे गुलामों को अपने मुल्क से निकाल बाहर करो। मुसलमान हमें लूटते थे सही—पर देश का धन देश में ही रहता था पर यह तो सात समुन्दर पार ले भागे। देखो तो भला नमक और अफीम पर भी महसूल। झाँसी का राजा मर गया है। उसने मरते न साथ बच्चे को निशान किस पर लगाया। इसलिए कि अंग्रेज उनके दोस्त हैं। पर दगा में कैसे दोस्त निकले। उसकी रानी को किले से निकाल कर बाहर किया। बेटे का बेटा नहीं माना। क्यों भाई, अब तो तुम्हारा बेटा भी नहीं चलेगा। भगवान ने गोद न भरी तो गोद नहीं ले सकते। नर्क में पड़े रहना होगा। राम राम, यह तो मुसलमानों से भी बुरे राजा

हैं। देखो तो सतारा हड़प लिया। शिवाजी की सन्तान पर तमाशा। अवध के बादशाह को गद्दी पर से उतार दिया। नागपुर भी हजम कर लिया। अरे भाइयो! तुम्हारे बदन में खून है या नहीं। बदला लो। अब भी समय है। उठाओ तलवार और दिखा दो इन्हें उसका जौहर। चुप रहने का समय नहीं भाई! समय न बारम्बार। ब्राह्मण का वचन प्रमाण। अंग्रेजों के खून से हाथ रंगो। सुना नहीं तुमने विलायत की मलका ने हुक्म दिया है कि अब कलकत्ते की काली माई पर गो-रक्त चढ़ा करेगा। देखो कितनों का धर्म समुद्र पार उतार कर बिगाड़ दिया, अब क्या है। दीन के रहे न दुनिया के। चेतो! चेतो!! वर्ना सब कालापानी भेज जाओगे। इसी बैरकपुर में कैसा कत्लआम हुआ था। जानते हो? क्या अब फिर उसी की इन्तजारी कर रहे हो? अब तो न कोई ब्राह्मण रहेगा न क्षत्री। तुम्हारी औलाद की जात गई। अब क्या रखा है। कसम खाओ कि अपना खून बहाएँगे—पर हुक्म गोरों का न मानेंगे। तो बस खून बहाने को तैयार हो जाओ। अरे, मैं तुम से कह रहा हूँ। ब्राह्मणों से, क्षत्रियों से। कोई भंगी-चमारों से नहीं कह रहा हूँ। जब तुम समुद्र पार से लौटोगे तो तुम्हारी जात चली जाएगी। तुम्हारे बाल बच्चों की शादी कहाँ होगी? देखा तो नया कानून बनाया है। अब तो ब्राह्मण-क्षत्री सब की विधवाएँ फिर से ब्याह करेंगी। राम राम। अब सती भी तो कोई नहीं हो सकती। जन्म भर राँड़ होकर बैठे। कभी राजपूत अपनी बहू पराई बना सकता है? कहा तो भला! फिर ब्राह्मण का धर्म कहाँ रहा? अब तो तुम्हारी गैरत भी गई। दीन-धर्म चला गया। तुम नष्ट हो चुके।

अब कहो बसंत का टीका किसके माथे पर लगेगा। सारा हिन्दुस्तान इन फिरंगियों ने फतह कर लिया। लो भाई अब मोर्चे

की सड़क बन गई है और तार लग गए। भारत की भूमि बाँध ली गई। यह नया गोरखधन्धा है। यह लोहे की पटरी जब तक जब पहुँच जाएगी, तो तुम्हारे सब बाल-बच्चे उसमें भर-भर कर रेल में भेज दिए जाएँगे। यहाँ अंग्रेज बच्चे रहेंगे। अरे भाइयो अब चेत जाओ। इन अंग्रेजों को नष्ट कर दो। लो, यह गीता की पोथी है। इसे छूकर कसम खाओ। मैं सारे हिन्दुस्तान में घूमता रहा हूँ। मुझे बारह बरस हो गए। अब सारे हिन्दुस्तान में आग लगने वाली है। चिनगारी रखने की देर है। यह पता न होगा कि इन फिरंगियों का नामोनिशान न रहेगा। सारे हिन्दुस्तान की फौजों ने इसी गीता को छूकर कसम खाई है। तुम भी कसम खाओ। सब भेद गुप्त रखोगे। वक्त का इन्तजार करोगे और ज्यों ही ज्वालामुखी फटेगा तुम भी नंगी तलवार लेकर उठ खड़े होगे। बोलो जय कालीमाई। जय औगड़ वाली ज्वाला माई। बस मुझे कालीमाई की आन है। कालीमाई ने मुझे भेजा है। उसीके हुक्म से मैं काम करता हूँ। भर दो खप्पर कालीमाई का इन अंग्रेजों के खून से। अंग्रेज अकेले हैं। अपने मुल्क से दूर हैं। इनके आदमी कम हैं। वे ईरान और रूस से लड़ रहे हैं। बस यही मौका है। ला, छुओ गीता महारानी को और कसम खाओ। फिर मैं जाऊँगा बनारस इलाहाबाद कानपुर और मेरठ।'

सब श्रोता सकते की हालत में थे। पहले मगल पाण्डे ने और फिर प्रत्येक ने गीता छूकर प्रतिज्ञा की कि हम तैयार हैं, तयार रहेंगे सब बात गुप्त रखेंगे और समय पर दो-दो हाथ दिखाएँगे।

*

सुखदा ने सुना एक नैष्ठिक ब्राह्मण बैरक में आया है। संगम पाण्डे के डेरे पर ठहरा है। भागवतपुराण बाँचता है। गीता के कर्मयोग की खास टीका करता है। रात उसने प्रवचन किया था। बहुत अच्छा बताता है। सुखदा को ऐसे पुरुष से विशेष लगाव था। उसने उसे अपनी कोठी पर बुला भेजा।

गोपाल पाण्डे भी उससे मिलने को उत्सुक था। वह गया और बरामदे में खड़ा हो गया।

सुखदा ने बाहर आकर पाण्डे की हँस कर अभ्यर्थना की। उसने कहा—'ब्राह्मण की बेटी हूँ मेरे पति अवश्य अंग्रेज हैं पर मैं हिन्दू हूँ। सुना है आप बड़े भारी विद्वान् हैं। शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आइए कृपा कीजिए, कुछ मुझ भी शास्त्र की बात सुनाइए।

आप क्या सुनना चाहती हैं?

आप भीतर आइए तो सही।

गोपाल भीतर आकर एक चौकी पर बैठ गया। बैठ कर उसने कहा। कहिए आप मुझसे क्या चाहती हैं?"

'कुछ मुझे भी धर्म-ज्ञान कराइए।

आप को उससे कुछ लाभ न होगा। जिस दोष से बचने के लिए धर्मज्ञान सिखाया जाता है वह बात तो आप कर चुकीं।

'मानी एक अंग्रेज से विवाह?

"हाँ।

"क्या आप मेरे दुर्भाग्यपूर्ण जीवन से परिचित हैं?

सब सुन लिया है।

"तो आप क्या समझते हैं—कि मेरा चिता पर जल मरना ही ठीक था?

"मैं तो यही समझता हूँ।"

'किस अपराध से? जरा सुनूं तो।

अपराध की बात तो तब उठती है, जब कोई दण्ड दिया जा रहा हो।"

"एक निरपराध अबोध बालिका को जीवित जला देना आपकी समझ में क्या है?

कोई आप को जबरदस्ती राह से उठा कर तो जलाने ले नहीं गया था। आपके पति की मृत्यु हो गई थी—और धर्म की रू से आपको उसके साथ सती होना आवश्यक था।

'मैंने उस पति को आँख उठा कर देखा भी न था। मुझसे इस विवाह की स्वीकृति भी न ली गई थी। न मेरा उस पति नामधारी व्यक्ति से कोई सम्बन्ध ही रहा।"

'तो इससे क्या? क्या आप उस पति की पत्नी होने से इन्कार कर सकती हैं? आप यह कह सकती हैं—कि वह आपका पति न था।"

'मैंने न तो अपनी स्वीकृति दी थी न मुझमें उस समय इन बातों का ज्ञान था कि मैं जानूँ कि पति क्या है और पत्नी क्या है?'

'तो फिर आप ही कहिए कि आप क्या राय दे सकती थीं। खैर। उस समय तो आप फिर भी आठ बरस की बालिका थीं कुछ-न-कुछ समझती थीं। परन्तु जब आपने जन्म लिया था—और आप केवल एक नवजात शिशु थीं तभी अनिवार्य रूप से एक पुरुष आपका पिता बन गया, दूसरी स्त्री माता बन गई। आपके माता पिता के पुत्र-पुत्री आप के भाई-बहन बन गए, उनके सम्बन्धी आपके चाचा, ताया चाची, ताई बन गए। और ज्यों ही आपने बोलना पहचानना सीखा, आपने बिना विरोध उन्हें उन्हीं रिश्तों से सम्बोधन

करना आरम्भ कर दिया। फिर अब इतनी समझदार ज्ञानी स्त्री होने पर भी आप इन सम्बन्धों और रिश्तों को अस्वीकार नहीं कर सकतीं। आप यह भी नहीं कह सकतीं कि मेरी स्वीकृति इन रिश्तों के लिए नहीं ली गई थी। इसलिए मैं उन्हें चाहूँ तो माता पिता भाई-बहन मानने से इन्कार कर सकती हूँ।

'इन रिश्तों की बात जुदा है पर पति-पत्नी के सम्बन्ध की बात जुदा है।

'जुदा क्यों है ?

पति-पत्नी तो जीवन-साथी होते हैं ?

जीवन-साथी ? मैं तो ऐसा नहीं मानता। मैंने हिन्दू धर्मशास्त्र पढ़ा है वे तो लोक-लोकान्तर के जन्म-जन्मान्तर के साथी हैं। हाँ— माता-पिता भाई-बहन अवश्य इसी जन्म के साथी हैं। परन्तु जब इनका अटूट और अविच्छिन्न सम्बन्ध है तो पति से क्यों नहीं। आप यह क्यों नहीं मानतीं कि यह पति भी जन्म-जन्म का साथी था। संयोग और भाग्य से वह बिछुड़ गया अब आप दूसरा विवाह कर कैसे सकती हैं ? आपको तो पतिगामिनी होना चाहिए।'

आप यह तो मानेंगे कि पति-पत्नी का सम्बन्ध उनके अपने सुख-दुःख का सम्बन्ध है।

'मैं तो नहीं मानता ऐसा। ऐसा होता तो फिर विवाह का बखेड़ा ही क्या ? यह तो सामाजिक सम्बन्ध है व्यक्तिगत नहीं। इसलिए इस मामले में सामाजिक और धार्मिक नियम पालन किए जाने चाहिए, व्यक्तिगत नहीं।

बड़े विचित्र रूढ़िवादी विचार हैं आपके इस मामले में।"

मेरे तो अपने कोई विचार नहीं हैं। धर्मशास्त्रों के विचार हैं। इन विचारों की सत्ता स्थापित होने में हजारों वर्ष लगे हैं।

हजारों अनुभव बड़े-बड़े मुनियों को हुए हैं। जीवन-धर्म लोक-परलोक समाज सब बातों पर ध्यान करके उन्होंने ये नियम बनाए हैं। साधारण पुरुषों को उन नियमों का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है।"

"बड़े आश्चर्य की बात है कि आप नौ वर्ष की एक अबोध बालिका को उसके मृत पति के साथ जीवित जला देने जैसे कर्म का समर्थन करते हैं।"

इससे भी अधिक क्रूर कर्म हैं जिनका हमें समर्थन करना पड़ता है। युद्ध-क्षेत्र में मरने-मारने की परिपाटी कितनी प्राचीन है। सो यह कितना क्रूर कर्म है। फिर मरने-मारने वाले सिपाहियों का एक पेशा बना देना कितना क्रूर कर्म है। सम्मुख युद्ध में शत्रु पर जिसने व्यक्तिगत रूप में कोई शत्रुता नहीं की शस्त्र का वार करना कितना क्रूर कर्म है। पर ये सब क्रूर काम अनन्तकाल से होते रहे हैं, समाज की भलाई के लिए। उनकी अपेक्षा तो एकाध अबोध बालिका का चिता पर जला देना किसी गिनती में ही नहीं है। अब यदि सिपाही कहे कि—हमें क्यों मरने के लिए युद्ध में भेजा जाता है तो राज्य व्यवस्था कैसे कायम रह सकती है। इसीलिए—समाज में जीवन भी है—मृत्यु भी है। जैसे जीवन की आवश्यकता है—वैसे ही मृत्यु की भी है। इसलिए स्त्री हो या पुरुष—उसे कभी-कभी इस प्रकार अस्वाभाविक रूप में मरना ही पड़ता है। और वह असाधारण मृत्यु साधारण मृत्यु से बढ़ कर यशस्विनी मानी जाती है। युद्ध में मरने वाले वीरों को सूर्यलोक मिलता है। देवता उनके लिए विमान लाते हैं और पति के साथ चितारोहण करने वाली स्त्री स्वर्ग पाती है, पति-लोक पाती है।"

"क्या ये सब ढकोसले अन्धविश्वास की बातें नहीं हैं ?"

"हो सकती हैं। पर इनके बिना तो काम चलता नहीं न। या यों ही समझ लीजिए कि मिश्री के साथ मीठी कर के कड़वी दवा दी जाती है।

'पति के मरने पर स्त्री दूसरा विवाह करने में स्वतन्त्र है।

'वह विवाह न करे तो भी किसी पुरुष के साथ सम्बन्ध करने में स्वतन्त्र है। पर वह सामाजिक सम्बन्ध नहीं व्यभिचार कहाएगा। इसी प्रकार युद्ध से प्राण बचा कर भाग आने में सैनिक स्वतन्त्र है पर वह वीर नहीं कायर कहाएगा।

'तो आप क्या मृत्यु के इतने पक्षपाती हैं ?

'इस प्रकार की असाधारण मृत्यु, जो कर्तव्य और मर्यादा के आधार पर स्त्री-पुरुषों को वरण करनी होती है बलिदान कहाती है। इन बलिदानों से समाज का कल्याण होता है। समाज की जड़ें मजबूत होती हैं। यदि यह भी मान लिया जाय कि धर्म स्वर्ग की बातें ढकोसला हैं तो भी समाज की बातें ढकोसला नहीं कही जा सकतीं। यदि किसी देश में योद्धा जन्म ही न लें या वीर पुरुष कर्तव्य ही न पालन करें तो उस देश की सुख-समृद्धि कायम न रहेगी। आप जानती हैं कि विश्व की बड़ी-बड़ी प्रभावशाली घटनाएँ युद्ध के परिणामस्वरूप ही हुई हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ यदि स्वेच्छा से पतियों को अदलती-बदलती रहें तो समाज की मर्यादा कायम नहीं रह सकती।

कैसे नहीं रह सकती। पुरुष दूसरा ब्याह कर सकता है—तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती ?

"इसलिए कि पुरुष समाज का आधार व्यक्ति है। और स्त्री उसकी पूरक है। विवाह के बाद पुरुष अपने घर रहता है—पर स्त्री पति के घर आ जाती है। पत्नी के मरने पर पुरुष दूसरा ब्याह

ता है, तो उसके सामाजिक सम्बन्ध टूटते नहीं—अपितु टूटते न्बन्ध बन जाते हैं। टूटी गृहस्थी जुट जाती है। उसका परिवार जाता है। पर स्त्री यदि दूसरा ब्याह करे, तो उसके सब पूर्व ामाजिक सम्बन्ध टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। क्योंकि वह केवल पति ही की पत्नी नहीं है उसके परिवार वालों की भी रिश्तेदार । किसी की चाची, किसी की ताई, किसी की भौजाई। ये सम्बन्ध ाधारण नहीं हैं। समाज के भारी अंग हैं। दूसरा विवाह करने र यह सम्बन्ध टूट जाएँगे और समाज भंग हो जाएगा। इसके तिरिक्त एक बात है—आप स्त्री हैं आप से कहने में संकोच ाता है।'

आप की बातें विचित्र हैं पाकिस्तानी हैं—पर प्रभावशाली हैं, आप क्या कहना चाहते हैं, वह कहिए।"

आप आज्ञा देती हैं तो कहता हूँ—'हमारे हिन्दू-धर्म-शास्त्र में त्री को युवती होने से प्रथम ही बाल्यावस्था में ब्याह देने की ाज्ञा है।'

"यह प्राचीनकाल में नहीं होता था पीछे से यह बुराई बढ़ाई गई है।

"पीछे से ही सही। पर यह बुराई नहीं है। बहुत बड़ी भलाई है। जिसे सोच-समझ कर ही दूरदर्शी बुजुर्गों ने बढ़ाया है।"

"दूरदर्शिता इसमें क्या है?"

वही कहता हूँ। कन्या का युवती होने से प्रथम ही हिन्दू ब्याह देते हैं। वह पति घर में आ कर युवती होती है। इससे एक तो पति के परिवार से उसकी आत्मीयता के सम्बन्ध जुड़ते हैं। दूसरी बात यह है कि उसकी सन्तान का पिता—अमुक व्यक्ति उसका पति ही है—इसका असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त रहता है। अब यदि

स्त्री विधवा होने पर पति की सहगामिनी नहीं होती—दूसरा ब्याह करती है, तो सन्तान का पिता कौन है—इसके सौ झगड़े खड़े हो सकते हैं। ऐसा भी सम्भव हो सकता है—कि वह पूर्वपति की गर्भिणी हो। फिर सम्पत्ति के बँटवारे और अन्य सामाजिक मामलों में व्याघात पहुँचता है। पिता का असंदिग्ध होना हिन्दू-धर्म का सबसे भारी महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है। और यह आर्थिक भी है, सामाजिक भी और आध्यात्मिक भी। इसी से एक स्त्री के एक ही पुरुष के संसर्ग में रहने की एकान्त चेष्टा की जाती है।

'मैं आपकी बातों से सहमत नहीं हूँ परन्तु आप बड़े विचारशील हैं इसलिए आपका सम्मान करती हूँ।

आप जीवन को अनन्त नहीं मानतीं। शरीर के अन्त तक ही जीवन मानती हैं। भौतिक संसार ही से आप का नाता है। इससे आप मुझ से सहमत नहीं हो सकतीं परन्तु आप एक साहसी और उदार स्त्री हैं मैं भी आपका आदर करता हूँ। कहिए आपकी मैं क्या सेवा कर सकता हूँ।

"क्या आप ज्योतिष जानते हैं ?"

"जानता हूँ।"

"भविष्य कह सकते हैं ?

'कह सकता हूँ।"

'तो कृपया मेरा भविष्य कहिए।

'नहीं कहूँगा।"

क्या ?

क्योंकि आप श्रद्धावश नहीं कौतूहलवश यह प्रश्न करती हैं। शास्त्र कौतूहल निवारण करने के लिए नहीं होते।"

आप की बात यथार्थ है। अच्छा एक बात बताइए।"

'पूछिए।'

"आप मेरी सब जीवन-कथा सुन चुके हैं। अब मुझे यहाँ इस स्थान पर इस दशा में देख कर आप प्रसन्न हैं या नहीं?

'नहीं।

"मैं चिता पर जल मरी होती तो सन्तुष्ट होते?"

"अवश्य।

'क्यों भला?

'ब्राह्मण हूँ निष्ठा की पूँजी से ब्राह्मण का सब कारोबार होता है। आप उस तरह जल मरी होतीं—और कभी मैं इस स्थान से गुजरता और नाम पाता तो सती माता कह कर उस चिता भूमि में माथा रख आपको प्रणाम करता और श्रद्धा के आँसू आपकी भेंट करता।"

'किन्तु अब?

अब तो मैं केवल आप पर दया कर सकता हूँ।

सुमदा को एक असह्य भार दबाए डाल रहा था उसने कहा—"क्या आप साहब से मिलना पसन्द करेंगे?

'नहीं।"

'क्यों?"

'साहब लोग हम काले हिन्दुस्तानियों से मिलना पसन्द नहीं करते। वे अपने को हमसे श्रेष्ठ और हमारा स्वामी समझते हैं। परन्तु मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऐसा नहीं समझता।'

"क्या साहब से आप कुछ चाहते हैं?

'कुछ नहीं।

सुमदा देवी कुछ देर चुपचाप अभिभूत-सी खड़ी रहीं। फिर उन्होंने दस रुपये निकाल कर देते हुए कहा—"मैं जानती हूँ कि

आप मेरे यहाँ भोजन नहीं करेंगे । अत ये रुपये लीजिए, भोजन के लिए देती हूँ ।

'नहीं ले सकता । मैं केवल निष्ठावान् ब्राह्मणों का ही अन्न खाता हूँ । बारह वर्ष से मैंने यह व्रत लिया है ।

'मैं भी तो ब्राह्मण की बेटी हूँ ।

'क्या आप मुझसे कुछ माँगती है ?

आशीर्वाद दीजिए ।

'कैसा ?"

शुभदा क्षण भर चुप रही । एक चमक उसके मन में आई । उसने कहा— 'जैसा आप देना चाहें । जैसा अपना धर्म समझें ।

'तो आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारा यह सुहाग अचल रहे ।

शुभदा ने गले में आँचल डाल कर ब्राह्मण की पग-भूमि ली और गोपाल पाण्डे वहाँ से तेजी से चल दिए ।

२०

पहली ही बार शुभदा ने अपने वतय जीवन में गोपाल पाण्डे के समक्ष अपने को नगण्य समझा—वह अभिभूत-सी उसके पीछे बरामदे तक चली आई । पर ब्राह्मण ने पीछे फिर न देखा नहीं वह फाटक खोल बाहर चला गया । शुभदा उसे खड़ी देखती रही । उसी समय उसने देखा—फाटक के बाहर एक वृक्ष के नीचे एक दीन हीन वृद्ध ब्राह्मण लाठी टेके खड़ा एकटक उसी की ओर देख रहा है । उसके शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं हैं चिथड़े हैं । दाढ़ी उसकी

बढ़ी हुई है और कमर झुक गई है। कुछ तो इस समय घुमदा का मन भावुकता से आन्दोलित हो रहा था, कुछ वह स्वभाव से ही दयालु थी। उसके हाथ में दस रुपए थे जो उसने पाण्डे को देने चाहे थे, पर पाण्डे ने अस्वीकार कर दिया था। उसने बैरा को बुला कर और उसके हाथ में वे रुपए देकर कहा—'देखो यह फाटक के बाहर बूढ़ा ब्राह्मण खड़ा है ये रुपए उसे दे आओ।

बैरा रुपए लेकर चला गया। घुमदा वहीं खड़ी होकर ब्राह्मण को देखती रही। पर ब्राह्मण ने रुपए नहीं लिए। उसने कहा—वह इस घर की मालकिन के दर्शन करना चाहता है। बैरा से यह बात सुन कर घुमदा ने ब्राह्मण को भीतर बुलाने की आज्ञा दी। बूढ़ा ब्राह्मण लाठी टेकता काँपते पैरों से कुटी मुर्झी पड़ी हुई सड़क पर आगे बढ़ा। अभी वह मुश्किल से बीस कदम आगे आया था कि घुमदा ने उसे पहचान लिया और वह इस तरह उसकी ओर दौड़ी जैसे गाय बछिया को देख कर दौड़ती है। ब्राह्मण के निकट पहुँच कर वह वहीं सड़क पर उसके पैरों में लोट गई। ब्राह्मण के हाथों से लाठी छूट गई। उसने काँपते हाथों से घुमदा को उठा कर हृदय से लगा लिया। अब पिता और पुत्री दोनों मूक मौन रुदन रो रहे थे। यह एक आहत पिता और आत्मविस्मृता पुत्री का मिलन था, जिसकी कभी उन्होंने आशा नहीं की थी। नौकर चाकर और बैरा सब जड़ बने खड़े रहे थे—पर किसी को कुछ कहने का साहस न होता था।

बहुत देर बाद घुमदा ने आँसू पोंछ कर कहा—"मैं तो आपको सपनों में देखा करती थी बापूजी अब आप से मिलने की क्या आशा थी?"

"जब मैंने तुझे चिता पर बैठने के लिए घर से बाहर किया, तो मैं तेरी ससुराल तक तेरी पालकी के पीछे-पीछे रोता-कलपता आया था। तेरी माँ तो पछाड़ खा कर गिर गई थी और बहन जोर-जोर से रो रही थी। पर मैं तो तेरे ही ध्यान में सबको भूल गया था। बेटी, मैंने निश्चय किया था कि तेरे ही साथ मैं भी चिता में कूद पड़ूँगा तुझे मैंने कितने चाव से छाती से लगाकर पाला था—और उस दिन तुझ दुधमुँही को मैं चितारोहण के लिए भेज रहा था। मेरे जैसा निष्ठुर पिता कौन होगा भला? कौन मुझे ब्राह्मण कह सकता है? मैं तो कसाई हो गया था बेटी। और धर्म के इस दृढ़ बन्धन ने मेरी आँखें अन्धी कर दी थीं। मेरे सोचने विचारने की शक्ति नष्ट हो गई थी पर तेरे साथ जल मरने की मैंने ठान ली थी।

'मैं किसी को मुँह दिखाना न चाहता था। इसलिए छिप कर मैं वहीं बैठ गया जहाँ चिता बनाई गई थी। मैंने देखा मेरी बेटी तो रो ही नहीं रही है। मुझे मालूम था कि तुझे धतूरा मिला कर भाँग पिला दी गई थी। फिर तुझे भले-बुरे का क्या ज्ञान था भला! मैं चाह रहा था जितनी जल्दी यह काम खत्म हो तो ही भला। मैं इस प्रतीक्षा में था कि चिता की ज्वाला तेज हो तो मैं उसमें कूद पड़ूँ। पर इसी समय एक चीख मार कर तू चिता से कूद पड़ी। तेरे कपड़ों में आग लग रही थी। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा था। उन्होंने तुझे पकड़ कर फिर जलती चिता में झोंक दिया। मैं पागल की भाँति झपटा कि तुझे बचा लूँ। पर इतने में ही फिरंगी डाकू आ गए और तुझ ले भागे।

'हे परमेश्वर! मेरा धर्म-कर्म पुण्य सब नष्ट हो गया। मैंने उन डाकुओं का पीछा किया—पर वे गोली दागते जा रहे थे। एक गोली मेरी टाँग में लगी और मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर गया। मैं वहीं

नहीं जानता कब तक वहीं पड़ा रहा। जब होश आया तो पहले तो मुझे समझ ही में न आया कि क्या हुआ होगा, जाग्रत घटना हुई या स्वप्न देखा। पर धीरे-धीरे सब बातें याद आने लगीं। ओह! कि बस मरने का सौभाग्य भी मुझे न मिला। मेरी बेटी कहाँ गई? उसका धर्म कैसे बचेगा? यही सोचकर मैं विक्षिप्त हो उठा। मेरे लोक-परलोक दोनों बिगड़ गए। फिर मैं घर लौट कर नहीं गया। अपना जनेऊ तोड़ डाला, कपड़े फाड़ डाले और वहाँ की धूल सिर पर उछाल ली। फिर मैं वहाँ से यहाँ और यहाँ से वहाँ भटकता फिरा। मेरी टाँग में गोली लगी थी। मैंने उसका कोई इलाज नहीं किया। बरसों वह जख्म सड़ता रहा, फिर आप ही अच्छा हो गया। पैर लँगड़ा जरूर हो गया। आज चौदह वर्ष बीत रहे हैं तब से मैं देश-देश मारा फिर रहा हूँ। भीख माँग कर इस पापी पेट की ज्वाला बुझा लेता हूँ। केवल तेरी वह मूर्ति, जब तू चीख मार कर चिता से कूदी थी, मेरे मानस-पटल पर छाई हुई है। वह मुझे न मरने देती है, न जीने देती है।

भला इस बात की आशा और कल्पना कब हो सकती थी कि मैं फिर तुझे देख सकूँगा और इस रूप में। बहुत दिनों बाद मैं कलकत्ता आया। वहाँ एक दिन मजूमदार महाशय से भेंट हो गई। वे मुझे अंक में भरने को दौड़े, पर मैं पीछे हट गया। मैंने कहा—"ना-ना मुझे मत छूना मजूमदार महाशय। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, चाण्डाल हूँ, पतित हूँ। फिर कुछ देर हमने आँसू बहाए और उन्हीं से मुझ तेरा यहाँ का पता लगा। तुझे अपनी आँखों से एक बार देख लेने का लोभ मैं नहीं संवरण कर सका। आज पन्द्रह दिनों से मैं यहाँ आकर सुबह से शाम तक खड़ा रहता हूँ—पर तेरी नजर मुझ पर नहीं पड़ी। आज मेरे भाग्य जागे। मैंने तुझे देखा। मिलना हो गया। बड़ी बात हुई। बस अब जाकर गंगा में डूब मरूँगा।

शुभदा चुपचाप अपने पिता की यह भीषण दर्द भरी कहानी सुनती रही। उसमें न जवाब देने की सामर्थ्य थी—न कुछ करने की। उसने सुबकियाँ लेते हुए कहा—"पिता यह न होगा। अब आप मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते। चलिए, भीतर चलिए।"

"नहीं बेटी। तेरे घर भला मैं कैसे जा सकता हूँ ? कभी ब्राह्मण था—यह अब भी नहीं भूला हूँ।"

"हाय रे भाग्य ! जिन्हें विवाह यज्ञोपवीत आदि अनुष्ठानों में बुलाते बड़े-बड़े राजा रईस हाथी और पालकी सवारी के लिए भेजते थे—जिनके शिष्य समूचे नदिया प्रान्त में फैले हैं वही दीनबन्धु बन्द्योपाध्याय आज इस दीन-हीन दशा में पुत्री के सम्मुख खड़े हैं। कैसी विडम्बना है !"

वृद्ध ने कहा— "बस-बस इन बातों से क्या ? होंगे कोई दीनबन्धु बन्द्योपाध्याय। मैं नहीं जानता उन्हें। मैं एक पतित पापी पुरुष हूँ और गंगा की गोद में शरण लेना ही मेरा कर्तव्य है। भगवान् तेरा कल्याण करे। लो मैं यह चला।"

इतना कह कर वह निर्मोही वृद्ध पिता मुँह मोड़ कर चल खड़ा हुआ। शुभदा चिल्लाती ही रही "पिता-पिता-पिता—ऐसा न करो। ऐसे निर्मोही न बनो। पिता यह तुम्हारी वही शुभदा है एक बार इसकी ओर देखो।"

पर बूढ़ा ब्राह्मण अपनी लँगड़ी टाँगों को जल्दी-जल्दी घसीटता हुआ, तभी से चल कर धूप में विलीन हो गया। शुभदा मूर्च्छित होकर वहीं भूमि पर गिर गई।

★

दो दिन के दौरे के बाद मेकडानल्ड कलकत्ता से लौटे थे। उन्हें अब कमाण्डर-जनरल बना दिया गया था। अब वे अपने सेक्टर के सर्वोच्च सैनिक अफसर थे। वे जर्क-बर्क पोशाक पहन और नए ओहदे का तमगा छाती पर लगाए, आनन्द और उल्लास से भरे हुए घर में आए। उन्होंने सुना सुमदा शयनागार में है। वे सीधे शयनागार में आकर बोले— 'देखो-देखो तो सुमदा—यह मेरी नई ड्रेस—मेरे तमगे। और सुनो, मैं मेजर-जनरल बन गया हूँ। क्या तुम खुश नहीं हो?"

खुश हूँ।" सुमदा ने बुझी हुई आवाज से कहा। मेकडानल्ड ने सुमदा के विषाद पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा— 'इस वर्दी में कैसा लगता हूँ तुम्हें?

"बहुत बड़े आदमी लगते हो।"

"मेरी प्यारी सुमदा, मेरी हर तरक्की में तुम्हारी भी तरक्की है, मेरी बढ़ोतरी तुम्हारी ही बढ़ोतरी है।"

"यह केवल तुम्हारे अनुग्रह के कारण। सच पूछो तो मुझे इन कपड़ों में तुम्हें देख कर डर लगता है।"

'कैसा डर?"

"वैसा ही, जैसे किसी छोटे आदमी को होता है बड़े आदमियों से।"

"तुम छोटी हो यह तुम से किसने कहा?"

'मेरी आत्मा ने। आखिर, मैं हीन-हीन, भ्रष्ट पतिता स्त्री हूँ।'

'क्या कारण है कि तुम इस समय ऐसी बातें कर रही हो? तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है। बाल रूखे हैं। आँखें [illegible]

तुम्हें क्या हो गया है, मेरी प्यारी सुभदा ? क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है ? क्या मैं फौज के बड़े डाक्टर को बुलाऊं ?

"डाक्टर की जरूरत नहीं है। मैं बीमार नहीं हूँ।

"लेकिन तुम्हें हो क्या गया है ? कहो तो क्या मेरे पीछे कोई घटना घटी है ?"

'मेरा मन खराब हो गया है और मैं जरा सोना चाहती हूँ।

'तो तुम सो रहो।' मेकडानल्ड ने यत्न से सुभदा को बिछौने पर सुला दिया और वह चिंतित भाव से बाहर आए। नौकरों के द्वारा उन्हें उन दोनों मुलाकातियों के आने की बात विदित हुई। पाण्डे के सम्बन्ध में वह जानता था। उसे सुभदा मिल चुकी थी। पर दूसरा मुलाकाती कौन था—यह वह न जान सके। उन्होंने यह निर्णय किया कि जब सुभदा स्वस्थ होगी तो उससे बातें करेंगे।

और रात को जब दोनों भोजन करने बैठे तो मेकडानल्ड ने कहा—"सुभदा प्रिये। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। तकलीफ न हो तो बताना।

'पूछो।

"मैंने सुना मेरी गैरहाजिरी में दो आदमियों से तुम्हारी मुलाकात हुई। इस समय जो तुम्हारी तबियत खराब हो रही है क्या उन मुलाकातों का तो परिणाम नहीं है ?"

'उन्हीं का परिणाम है।"

'पाण्डे के सम्बन्ध में तो मैं जानता हूँ। वह सिपाहियों का गुरु है। मेरी ही आज्ञा से उस छावनी में कथा-वार्ता कहने की अनुमति मिली थी। सुना है—बड़ा विद्वान् पण्डित है।"

'केवल विद्वान् ही नहीं है, त्यागी और निष्ठावान् ब्राह्मण है। उसने मुझे मेरे जीवन के लिए लज्जित कर दिया। अब तक तो

मैं उस काम को अत्याचार समझ रही थी जो मेरे साथ हुआ, और प्रायः भारतीय हिन्दू विधवाओं के साथ होता ही रहा है। मेरे समक्ष बड़े प्रबल शब्दों में उसने उसका समर्थन किया। मैं नहीं जानती थी कि कोई मेरे विचारों को डिगा सकता है, पर उसने ऐसा ही किया।"

मैं भी सुनूँगा कि वह उस भयानक रिवाज के समर्थन में क्या दलील रखता है। मैं आज शाम को उसे बुलाऊँगा।"

'वह नहीं आएगा। न तुम से बातें ही करेगा न मुलाकात करेगा।'

"क्या तुमने उससे कहा था ?

'कहा था पर उसने स्वीकार नहीं किया।' कहा— 'इससे कुछ फायदा नहीं है। वास्तव में वह बिल्कुल पुराने विचारों का हिन्दू है और उसकी बातें बहुत प्रभावशाली हैं।

"मालूम होता है उसकी बातों का तुम पर बहुत प्रभाव पड़ा है।"

"क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि उसने मुझसे क्या कहा ?"

"मैं तुम्हारे मुँह से यह बात सुनना चाहता हूँ जिसने तुम्हें विचलित कर दिया है।"

"मैंने जब उससे पूछा—कि क्या वह मेरे इस नए जीवन को देख कर प्रसन्न है ? तो उसने मेरी नाराजी की बिना परवाह किए कहा—नहीं। और जब मैंने धड़कते हृदय से उससे पूछा—यदि मैं चिता पर उस दिन जल मरती, तो क्या वह प्रसन्न होता ? तो उसने बेधड़क कहा—हाँ। और जब मैंने उससे इसका कारण पूछा—तो उसने कहा—कि यदि मैं उस भूमि पर कभी आ पहुँचता जहाँ कि तुम सती हो गई होती तो मैं 'सती माता' कह कर तुम्हें धरती पर माथा टेक कर प्रणाम करता, श्रद्धा के आँसू बहाता। परन्तु अब ? उसने कह दिया अब तो मैं केवल तुम पर रहम कर सकता हूँ।"

पर मैं इन भारतीय ब्राह्मणों की नस जानता हूँ। कुछ रुपया पाने से उनकी बातचीत का टोन बदल जाता है।"

'ऐसा भी वह आदमी नहीं है। मैं जानती थी कि वह मेरा छुआ कुछ भी खाए-पिएगा नहीं। इसी से मैंने दस रुपए देने चाहे थे। पर उसने नहीं लिए।"

"वह रुपए लिए बिना ही चला गया ?'

वह मुझे आशीर्वाद दे गया कि तुम्हारा यह नया सुहाग बना रहे।"

"मुझे तो ऐसा तभी से प्रतीत हो रहा है जैसे नंगी तलवार लिए वह ब्राह्मण मेरी रक्षा यत्न से कर रहा है।"

आश्चर्य है। मैंने आज से पहले तुम्हें किसी व्यक्ति से इतना प्रभावित होते नहीं देखा था। वह दूसरा बूढ़ा ब्राह्मण कौन था ?"

"बेचारे भाग्य के मारे मेरे पिता थे।"

'क्या ? तुम्हारे पिता थे ? तुमने उन्हें रोका नहीं, चला जाने दिया।

सुभद्रा ने गद्‌गद् कण्ठ से आँसू बहाते हुए पिता-पुत्री की उस मुलाकात का जिक्र किया। उनके १४ बरस भटकने की कथा भी सुनाई, फिर सिसकियाँ लेते हुए कहा—'वे बरामदे की सीढ़ियों पर भी नहीं चढ़े और अब गंगा की गोद में अनन्त विश्राम लेने को चले गए।"

"ठहरो मैं उन्हें तलाश करने को सिपाही भेजता हूँ। हमें उन्हें ढूँढना होगा।"

'मैंने उन्हें पाकर खो दिया। अब तुम उन्हें ढूँढ कर न पा सकोगे।"

'परन्तु घूमरा, हमारे रहते उस बुजुर्ग का इस प्रकार प्राण देना कैसे सम्भव हो सकता है। मैं अभी सिपाही भेजता हूँ।' इतना कह कर जनरल मेकडानल्ड तेजी से उठ कर चले गए।

उन्होंने बहुत से सिपाही चारों ओर दौड़ाए। परन्तु ब्राह्मण का पता न लगना था न लगा। गोपाल पाण्डे भी वहाँ से जा चुका था, अतः उससे भी मेकडानल्ड की मुलाकात न हो सकी।



२२

नैनीताल की आबादी से डेढ़-दो मील नीचे घाटी में पातालेश्वर महादेव का एक मन्दिर था। सच्चे अर्थों में इसे मन्दिर न कह कर गुफा कहना ठीक होगा। गुफा बहुत अँधेरी और तंग थी। उसमें आदमी सीधा खड़ा होकर नहीं जा सकता था। गुफा के उस छोर पर शिवलिंग था। शिवलिंग भी एक अनगढ़ पत्थर की शिला के रूप में था। लिंग पर एक झरने से जो जल गिरता था वह गुफा में भीतर ही भीतर गायब हो जाता था। यह गुफा अति प्राचीन थी। गुफा के बाहर एक मनोरम झरना था जिससे काफी ऊँचाई से जल गिरता था। कुछ दिन पूर्व एक अवधूत महात्मा यहाँ आकर रहे थे। उन्होंने एक कुटिया बनाई थी—और कुछ गौएँ पाली थीं। महात्मा के पास आस-पास के गाँवों के कुछ स्त्री-पुरुष आते—भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करते और उनके उपदेश तथा आशीर्वाद प्राप्त करते थे। महात्मा बहुत बूढ़े थे और कहीं आते-जाते न थे। वे केवल दुग्ध-आहार करते थे। भक्त-जन उन्हें दूध दे जाते या गाय का दूध वे दुह लेते थे। परन्तु वे किसी से कुछ माँगते न थे। सब लोग उन्हें दुग्धाहारी बाबा

कहते थे। उनके आने से पूर्व इस गुफा के सम्बन्ध में कोई कुछ न जानता था। यहाँ भयानक गहन वन था, तथा यह राह-बाट से बहुत हट कर था। यहाँ तक आने की राह न थी। महात्मा जी ने गुफा को साफ किया, आम रास्ते से एक पगडण्डी की राह बनाई और नियमित रूप से शिवार्चन आरम्भ किया। पहले कुछ गड़ेरियों ने उन्हें देखा—फिर उनके द्वारा आसपास के गाँवों में उनकी चर्चा हुई, और इस प्रकार भक्त लोग उनके पास आने-जाने लगे तथा पातालेश्वर भगवान की पूजा करने लगे। शिवरात्रि को यहाँ एक मेला भी लगने लगा। बहुत से स्त्री-पुरुष जुटने लगे। चम्पूशाह ने महात्मा की पक्की कुटिया बनवा दी थी, और एक बारहदरी बनवा कर उस पर छप्पर डाल दिया था—जिसमें भक्त-जन आकर बैठते, चिलम-तम्बाकू पीते और भगवान् पातालेश्वर पर जल चढ़ाते थे। गुफा और शिव की बनावट तथा उस पर निरन्तर जल गिरना और लोप होना एक प्राकृतिक संयोग था किन्तु भोली भाली ग्रामीण जनता उसे चमत्कार समझती थी। धीरे-धीरे पातालेश्वर और दुग्धाहारी बाबा की चर्चा सारे नैनीताल और आसपास के गाँवों में होने लगी थी। शिवरात्रि पर यहाँ सौ दो सौ आदमी आ जुटते थे।

कुछ दिन बाद बाबा कैलाशवास कर गए। कुटी सूनी हो गई। लोगों का आना-जाना भी बन्द हो गया। धीरे-धीरे कुटिया टूट-फूट गई—बारहदरी का छप्पर भी सड़ गल गया। किसी ने उसकी मरम्मत नहीं की। अत यह स्थान फिर गहन भयानक जंगल में परिणत हो गया। वन पशु वहाँ चरने लगे। रात की बात तो दूर, दिन में भी लोग उधर जाते भय खाते थे। गड़ेरिए अलबत्ता कभी-कभी बकरियाँ चराते हुए उधर आ निकलते थे और वे पातालेश्वर को प्रणाम कर एकाध बिल्वपत्र चढ़ा देते थे। परन्तु शिवरात्रि का मेला वहाँ अवश्य

होता था। यद्यपि उसकी वह धूमधाम न थी, और उसे मेला भी कठिनाई से कहा जा सकता था, परन्तु दस-बीस जन वहाँ आते स्थान को साफ करते, नारियल फोड़ते, झरने में स्नान करते और पातालेश्वर बाबा को प्रणाम कर सूर्यास्त से प्रथम ही अपने घरों को प्रस्थान कर देते थे। रात को वहाँ रहने का साहस किसी को न होता था। कुछ लोगों ने तो यह भी कहना आरम्भ कर दिया था कि रात को वहाँ भूत प्रेत, बैतालों की चौकड़ी बैठती है। उसके बीच बैठकर साक्षात् भूतनाथ पातालेश्वर मण-मद्‌रा छानते हैं। ऐसी ही और भी कई किंवदन्तियाँ प्रचलित होती जा रही थीं।

जिस दिन की बात हम कह रहे हैं उस दिन अमावस की अँधेरी रात थी—और इस भयानक स्थान पर आधी रात के समय दस-ग्यारह मनुष्य एकत्रित थे। उनकी आकृति और वेशभूषा भी भयानक थी। वे चुपचाप किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। हवा बड़े जोरों से चल रही थी। पहाड़ों में हवा के टकराने का बड़ा भयानक शब्द होता था। चारों ओर का वातावरण ऐसा भयावह था—कि अच्छे-अच्छे वीर पुरुषों का भी कलेजा दहल जाय। परन्तु ये लोग अवश्य ही जीवट के आदमी थे। जो इस समय यहाँ एकत्रित थे, अवश्य ही उनका कोई भयानक इरादा था, और वे अवश्य ही अपने से अधिक किसी भयानक आदमी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

परन्तु उन्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक अति विकराल पुरुष ने वहाँ प्रवेश किया। उसके आते ही जो लोग धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, वे सहम कर पंक्ति बाँध कर खड़े हो गए, और उस भयानक आगन्तुक की ओर देखने लगे। यह आदमी कद में इन सबसे लम्बा था। इसके अतिरिक्त वह बहुत मजबूत आदमी था। उसमें साँड को मार गिराने की ताकत थी। उसके कन्धे पर एक कुल्हाड़ी थी,

जिसकी तेज धार वाला लोहा अँधेरे में भी चमक रहा था। उसकी कमर में एक लम्बी तलवार लटक रही थी, और एक बड़ा-सा छुरा उसकी फेंट में खुसा था। उसका खूँखार चेहरा घनी काली दाढ़ी से घिरा हुआ था। जिसमें लाल-लाल आँखें इस अन्धेरे में भी बड़ी डरावनी मालूम हो रही थीं। उसने आते ही एक-एक करके प्रत्येक आदमी के शरीर से कुल्हाड़ा छुआया। और प्रत्येक आदमी ने कुल्हाड़े को दोनों हाथों में थाम कर 'जय माँ काली—तेरा वार कभी न जाए खाली' कह कर सिर झुकाया।

फिर सब लोग चुपचाप इस भयानक आदमी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। उसने भेद भरी दृष्टि से एक-एक की ओर देखा—फिर उनमें से एक की ओर देख कर कहा—

"कहाँ है ?"

"हाजिर है सरदार।"

"लाओ।"

वह आदमी भीतर कोठरी में चला गया। और हाथ-पैर बँधे हुए एक आदमी को ढकेलता हुआ ले आया। यह मण्डूशाह था उसकी ओर दो कदम आगे बढ़ कर उस भयानक पुरुष ने कहा—

"क्यों बे हरामी बनिए, क्या तुझे उस पेड़ से लटका दूँ ?"

"सरदार, मुझ पर रहम करो बाल-बच्चेदार हूँ मैं।"

"तो ला, पाँच तोड़े गिन दे।

"दुहाई है इतना रुपया मेरे पास नहीं है।"

"तो जालिमसिंह डाल इसके गले में फंदा।"

वही साथी जो उसे लाया था—आगे बढ़ा। उसने रस्सी का फंदा उसके गले में डाल दिया। मण्डूशाह गिड़गिड़ा कर सरदार के पैरों में गिर पड़ा—और कहने लगा—

"सरदार, भगवान् की कसम है झूठ नहीं बोलता। इतना र मेरे पास नहीं है।"

"तुझे तो पन्द्रह दिन की मोहलत दी गई थी।"

"लेकिन लाऊँ कहाँ से ? मेरा तो सारा कारोबार ही च हो रहा है।

"झूठा दगाबाज, कपटी, चोर हमेशा रुपए की ऐसी देता यह बारह हजार का माल था लेकिन तूने पाँच दिए और अँगूठा दिया। बाकी तेरे मोटे पेट में गया कि नहीं ?

"कसम भगवान् की सरदार, उस सौदे में तो मुझ कुछ भी मिला। तमाम माल खोटा था।"

"खैर, तो अब या तो पाँच तोड़े गिन या मर।"

"इतने बेरहम न बनो सरदार। हमारा-तुम्हारा साबका का है। मैंने कभी तुम्हें धोखा नहीं दिया।"

"म नहीं जानता। पाँच तोड़े गिन और अम्बा बम। म यह जगल छोड़ने वाला हूँ। वह साला अंग्रेज कमिश्नर मेरे पी है। और मेरे पास पैसा नहीं है। मुझे रुपया द।"

"तो सरदार, ऐसा करो कि साँप मरे न लाठी टूटे।"

"सूअर, कोई गहरी चाल खेलना चाहता है।"

"कसम भगवान् की सरदार, मेरी बात तो सुन लो। फिर क्या पचास हजार पर हाथ साफ करो।"

"तो जल्दी कह क्या कहना चाहता है, माल कहाँ है ? '

"मरे भाई के घर।

"वहाँ मुझे फँसाने का जाल फैलाया है तूने। मैं ऐसी गोली नहीं खेला। कासिम लटका द साले को।"

"नहीं सरदार, सुनो तो—मेरा भाई मेरा जानी दुश्मन है

बहुत-सी रकम हड़प किए बैठा है। नकद रुपया इस वक्त उसके घर में है, कल-परसों ही दिल्ली से आया है। यह अवसर मत चूको सरदार। रुपया कहाँ रखा है—यह मैं जानता हूँ।'

"दगा तो नहीं करता।'

"बस मेरे तुम्हारे बीच गंगा है सरदार।"

'अगर दगा की तो घर-बार में आग लगा दूँगा। एक को भी जीता न छोड़ूँगा।

"सरदार, तुम्हारा काम बनेगा मेरे दिल का काँटा निकलेगा। दगा मैं नहीं करूँगा।"

"और, तो कब?"

'बस परसों!"

"इतनी जल्दी?"

"रुपया फिर उठ जायगा। हाथ कुछ नहीं लगेगा।

"तो परसों ही सही, उस घर में आदमी कितने रहते हैं?"

"परसों रात सिर्फ तीन-चार रहेंगे। भाई, उसकी औरत और नौकर।"

"हथियार है उसके पास?"

'तलवार है। तमचा, बन्दूक कुछ नहीं है। भाई मेरा यम्बू है। लड़ेगा नहीं।'

"और तू?

"फाटक तुम्हें खुला मिलेगा। आगे का काम तुम सँभालना।"

"देखा जायगा। अब तू क्या देता है?"

"मुश्किल से पाँच सौ दे सकता हूँ।'

"बाम्हन नहीं है रे साले, वह काम तो परसों होगा, पर तू तो आज ही मर, जालिम मिटता इसे।"

—

जालिमसिंह उसे घसीट कर पेड़ के नीचे ले गया और फाँसी का फन्दा उसके गले में डाल दिया। मन्डूशाह बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, अन्त में एक हजार देने को राजी हो गया। सरदार ने कहा—"अच्छा एक हजार ही सही। जालिमसिंह तेरे साथ जायगा रुपया इसे ही दे देना। काम रातो-रात होना चाहिए, और परसों तीसरे पहर मेरे दो आदमी मौका-मुहाल देखने तेरे घर आएँगे उन्हें सब मौके दिखा देना और अपने घर में छिपा रखना। खबरदार, चूकना नहीं नहीं तो जान नहीं बचेगी।

"इत्मीनान रक्खो सरदार, तुम्हारा हुक्म पूरी तौर से बजा लाया जायगा।"

इस पर सरदार ने फिर एक बार अपनी खूंखार नजरों से सब साथियों की ओर भेद भरी नजर से देखा और कुछ इशारा किया। सबने अपने-अपने बल्लम के लोहे के फल लाठियों से निकाल कर अंटी में छिपा लिए और एक बार उस भयानक पुरुष के कन्धे पर रखी कुल्हाड़ी को छू-छू कर 'जय माता काली तेरा वार कभी न जाए खाली' कहा। तब उस पुरुष ने भी कुल्हाड़ी का फल निकाल कर कपड़ों में छिपा लिया और अब सबके हाथों में केवल लाठियाँ और सरदार के हाथ में एक डंडा रह गया। सरदार ने कहा— 'सब भाई अलग-अलग जाओ और परसों पहर रात गए यहीं मिलो।"

बिना एक शब्द बोले—एक-एक आदमी चुपचाप वहाँ से चल दिया। जालिमसिंह ने मन्डूशाह के हाथ-पैर खोल दिए, और वह भी उसे लेकर एक ओर चल दिया। सरदार अकेला उस भयानक स्थान पर रह गया। वह कुछ देर चुपचाप वहीं खड़ा रहा और फिर वह भी तेजी से एक ओर को चल खड़ा हुआ।

★

परन्तु यह किसी को नहीं मालूम हुआ—कि किसी गुप्त श्रोता ने उनकी सारी बातें सुन ली हैं। जब सरदार भी वहाँ से चला गया तो वह गुप्त श्रोता एक चट्टान के पीछे से निकला और धीरे-धीरे उस अन्धेरी रात में तंग पथरीली पगडंडी पर चलने लगा। सब लोगों का रुख गहन जंगल की ओर था और वे यद्यपि भिन्न-भिन्न दिशा में गए थे—पर नीचे की ओर ही गए थे। परन्तु यह पुरुष बिना शब्द किए नैनीताल की ओर ऊपर चढ़ने लगा। इस समय तीन पहर रात जा चुकी थी। बस्ती में सन्नाटा था—एकाध कुत्ता बीच-बीच में भूँक उठता था। वह व्यक्ति बस्ती को पार कर ताल के किनारे-किनारे चलता चला गया और फिर वह ऊपर पहाड़ी पर चढ़ने लगा।

यह पुरुष वही गोरा सन्त था जिसकी चर्चा हम पिछले परिच्छेद में कर आए हैं। जिस समय वह अपनी कुटी में पहुँचा—पौ फटने लगी थी और पूर्व में आसमान पर सफेदी छाती आती थी। उसने एक दृष्टि पूर्व दिशा पर डाली और फिर अपनी बकरी और उसके बच्चों को देखा। फिर वह कुटी में आकर अपने कम्बल पर लेट गया।

जब वह सोकर उठा तो पहर दिन चढ़ गया था। यह इतवार का दिन था। आवश्यक कृत्यों से फारिग होकर उसने बकरी का दूध दुहा और उसे चरने को छोड़ दिया। इसके बाद वह बैठ कर एकाग्र चित्त से अपनी नोट बुक में कुछ लिखता रहा—जैसा कि उसका दस्तूर था। फिर वह उठा बकरियों को बाड़े में बन्द किया। झोला कन्धे पर डाला और हाथ में लाठी लेकर बस्ती की ओर चल खड़ा हुआ। बस्ती में आकर उसने बताशे बाँटे—और फिर धीरे-धीरे चल कर वह मण्टगाह के द्वार पर आ खड़ा हुआ।

गोरे सन्त को मण्डूशाह अच्छी तरह जानता था। उसने उसका हँस कर स्वागत किया। गोरा सन्त उसके पास बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगा। बातचीत पहले साधारण विषयों पर हुई। पीछे काम-धन्धे रोजगार की बाबत बातें होने लगी। मण्डूशाह ने कहा—

'बाबा काम-धन्धा रोजगार कहाँ है अब जब से कम्पनी सरकार का राज हुआ है, सब चौपट हो गया।'

'लेकिन तुम्हारा भाई तो खूब खुशहाल नजर आता है।'

मण्डूशाह को साधु का यह कहना अच्छा न लगा। उसने सफाई से कहा—

अपनी-अपनी तकदीर है साहब।

साधु ने कहा—'लेकिन सफाई और ईमानदारी से कारोबार करने से उसमें जरूर लाभ होता है।'

मण्डूशाह ने बिगड़ कर कहा—"क्या मैं बईमानी और झूठ का कारोबार करता हूँ ?"

"मेरे दोस्त मैं यह बात कैसे जान सकता हूँ।"

'तो तुम्हें साहब इस पचायत से क्या काम है ? तुम अपना काम देखो। असल में इस समय मण्डूशाह किसी से बात चीत करने के मूड में न था। अनेक प्रकार की चिन्ताएँ उसे बेचैन कर रही थीं। रात की भयानक घटना का असर भी उसके चेहरे पर अभी था। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। वह मौत के घाट उतरने से बाल बाल बचा था। उस पर हजार रुपए की चपत पड़ी थी और अब एक एक भयानक जिम्मेदारी उसके ऊपर सवार थी।

सन्त ने कहा—"दोस्त, सब लोगों की भलाई करना मेरा काम है।"

"तो तुम मेरी क्या भलाई कर सकते हो ?"

"देखता हूँ, आज तुम परेशान हो। तुम्हारा मन अच्छा नहीं है, क्या तुम बीमार हो ?'

"मैं बीमार नहीं हूँ !'

"तो फिर तुम किसी फिक्र से परेशान हो। इतना कहकर गोरे सन्त ने तेज नजरों से साहु को देखा। सन्त की बातों से साहु के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने कुछ शंकित चित्त से सन्त की ओर देखा—और कहा—

'मैं गृहस्थ हूँ—मुझे हजार चिन्ताएँ रहती हैं। तुम किस-किस का बन्दोबस्त करोगे ?"

"कर सकूँगा तो जरूर करूँगा दोस्त। मैंने कहा न सबकी भलाई करना ही मेरा काम है। बताओ आज तुम खुश क्यों नहीं हो ?"

'कौन कहता है कि मैं खुश नहीं हूँ ?"

'तुम्हारी ही चेष्टाएँ। तुम कोई बात छिपाने का यत्न कर रहे हो। मण्डूशाह घबरा गया और तेज नजरों से साधु की ओर देखने लगा। पर साधु ने शान्त वाणी से कहा— 'वे आदमी खुश हैं जो चिन्ताओं से मुक्त हैं। प्रभु यीशू मसीह ने कहा है—ऐ नेक आदमी नेकी कर और नेक बन। कितना अच्छा है नेक बनना। नेक आदमी को कभी किसी बात का खतरा नहीं होता न वह दूसरों के लिए खतरा बनता है। वह सब लोगों की भलाई करता है और अपना भी भला करता है।"

इतना कह कर सन्त वहाँ से उठ खड़ा हुआ। मण्डूशाह के मुँह से एक शब्द भी न निकला। उसके दिल में चोर बैठा था। परन्तु जब साधु चला गया—तो उसने आप ही आप कहा—ओह वह एक पागल

फिरंगी है। उसका क्या ? उसने मुँह फेर कर साधु की ओर देखा—जो अब उसके भाई के द्वार पर खड़ा उसे हाथ उठा कर आशीर्वाद दे रहा था। मण्डूशाह का मन हुआ कि वह छिप कर उसकी बातें सुने। एकाध बार वह उन दोनों के निकट होकर निकला। उसने सुना कि साधु उसके भाई से भी वैसी ही बात कर रहा है। उसका भाई साधु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक बातें कर रहा था। वह साधु से कह रहा था—"मेरा बच्चा दो सप्ताह से बीमार है। मेरा बाबा चल कर देख लो। तुम्हारी दवा से बहुतों को लाभ होता है मेरा भी भला करो।

मण्डूशाह ने भाई के ये उद्गार सुने। साधु ने कहा—"सबकी भलाई करना मेरा काम है।' यह भी सुना। फिर उसने देखा—कि वह मण्डूशाह के पीछे-पीछे उसके घर में चला गया है। मण्डूशाह अब साधु की ओर से अपना मन हटा कर अपने आवश्यक कामों में जुट गया।

घर के भीतर जाकर सन्त ने बालक को देखा। बच्चा ज्वर में बेसुध पड़ा था, और मण्डूशाह की स्त्री उसके निकट बैठी व्याकुल भाव से पुत्र का मुँह निहार रही थी। एक दासी घर का काम-काज करती फिर रही थी। बालक का मुँह पीला पड़ रहा था और वह कष्ट से धीरे-धीरे साँस ले रहा था। सन्त को देख कर मण्डूशाह की स्त्री अधीर होकर रोती हुई सन्त के पैरों में लोट गई। उसने कहा—बाबा चाहे जितना रुपया खर्च हो जाय मेरा लाल बच जाय।" सन्त ने करुणा के भाव से स्त्री को देखा और प्यार से बालक के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा—"कर्म फल सभी को भोगना पड़ता है। तुम्हारी गीता की पोथी में यही तो लिखा है। पर तुमने मुझे पहले नहीं बुलाया और बच्चा इतना कमजोर हो गया। इसके फेफड़े खराब हो गए हैं। देखो साँस कितनी तकलीफ से आ रही है। पर चिन्ता न करो, यत्न

करो। मैं दवा देता हूँ। दवा दो, पथ्य करो। ईश्वर भला करेगा। वह हमारा दयालु पिता है। प्रभु यीशु मसीह कृपा करें।

इतना कहकर उसने झोले से एक जड़ी निकाल कर और उसमें कुछ दूसरी दवा मिलाकर उसे दी। और कहा— 'यह दवा दो— मैं फिर कल सुबह आऊँगा।

स्त्री ने रोते हुए कहा— 'बच्चा मेरा बच्चा अच्छा हो भी जायगा ?"

'मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा। तुम भी करना। उसी की कृपा से तुम्हारा बच्चा अच्छा होगा।

इतना कहकर सन्त उठ कर कमरे से बाहर आया। उसके साथ ही मकूशाह भी आया। सन्त ने एक दृष्टि उसके घर पर डाली और बिना कुछ कहे-सुने वहाँ से चल दिया। उसने निश्चय कर लिया था कि आने वाली विपत्ति से वह उसकी रक्षा करेगा।

२४

जिस समय सन् १८५६ के मार्च में डलहौजी भारत से जा रहा था प्लासी के युद्ध को सौ बरस पूरे हो रहे थे। इन सौ बरसों में अपनी सेना और शासन के उत्कृष्ट नियन्त्रण के बल पर अंग्रेज निरन्तर भारत की शक्तियों से टकराते रहे और सदैव ही भारतीय शक्ति उनसे टकरा कर चूर चूर होती गई। भारतीय प्रदेश ज्यों-ज्यों अंग्रेजों के हाथों में आते गए, अंग्रेज वहाँ शासन का नियन्त्रण करते चले गए। अव्यवस्था और अंधेरगर्दी का अब भी दौर-दौरा था परन्तु अब कुछ सुधार हो रहे थे। अंग्रेज कर्मचारियों के उत्पात

और स्वेच्छाचारिता भी कम होती जा रही थी। पिण्डारियों और ठगों के उत्पात दब गए थे। पुलिस की व्यवस्था सुधर गई थी। अदालतों और सदर अदालतों के बन जाने से जनता के मन में न्याय की आशा बँधती जाती थी। यद्यपि अदालतों में घूसखोरी और अंधेर अभी तक कायम था। पर कुछ हाकिम अच्छे भी थे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एक ही शासन कायम होने से सड़कों और यातायात की व्यवस्था सुधर गई थी।

अंग्रेजी राज में सबसे अधिक सुविधा किसानों को मिली थी। जिन दिनों देश में छोटे-छोटे अनियन्त्रित राज्य थे और उनसे आए दिन युद्ध होते रहते थे—तो किसानों ही की खेती-बाड़ी की बर्बादी अधिक होती थी। फौजें खेतों को रौंदती चली जाती थीं रसद-सामान लूट लेती थी। जान-माल की सलामती नहीं थी। अब भीतरी युद्ध समाप्त हो चुके थे और किसान निर्द्वन्द्व हो खेती-बारी करते थे। अंग्रेजों ने अपने अधिकृत प्रदेश में लगान की व्यवस्था निश्चित कर दी थी और उसे अमल में लाने के लिए सेना अदालत और पुलिस का जाल बिछा दिया था। किसान निश्चिन्त होकर खेती करता था और सरकारी मालगुजारी अदा करता था। पंजाब रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद दस वर्षों तक नरक यन्त्रणा भोगता रहा। अब अंग्रेजी अमल में आने पर सर हेनरी लारेन्स जैसे अनुभवी समझदार, प्रबन्धकला में चतुर अंग्रेजों के कारण धाँधली की समाप्ति पंजाब के लिए वरदान बन गई थी।

डलहौजी ने कई अच्छे काम भी किए। नई योजनाएँ बनाईं। यद्यपि सफलतापूर्वक अपना राज्य चलाने के लिए ही सही पर लाभ देशवासियों को भी हुआ। उन्हीं के शासनकाल में पहली रेल लाइन बिछी। जो बम्बई से थाना तक बीस मील लम्बी थी। बाद में

देश भर में उसका जाल फैलता चला गया। तार का आरम्भ भी उसी ने किया। इस काम को पूरा करने में डलहौजी को बहुत-सी कठिनाइयों को पार करना पड़ा। सस्ते पोस्टेज के पोस्ट आफिस उसने खुलवाए। इससे प्रथम हरकारे चिट्ठी बाँटा करते थे और स्थान की दूरी के अनुसार किराया लगता था। डलहौजी ने दो पसे का पोस्ट कार्ड चलाया जिसे रेल के कारण काफी सफलता मिली। शिक्षा के क्षेत्र में उसने प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देश की भाषाओं को रखा तथा सहायता प्राप्त स्कूलों की परिपाटी चलाई। उसने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमण्ट भी खोला। जिसका उद्देश्य सड़कों पुलों नहरों की व्यवस्था करना था। गंगा की बड़ी नहर उसने निकाली और सड़क ग्राण्ड कलकत्ता से पेशावर तक बनाई।

निस्सन्देह ये सब काम शासन की सुविधा के लिए ही किए गए थे। पर लाभ इनसे प्रजा को भी पहुँचा और साधारण तथा सर्व साधारण अंग्रेजी राज्य को साध्य विधान की भाँति मानने लगा। डलहौजी से प्रथम अंग्रेजी सरकार की सेनाएँ कुछेक प्रेसीडेन्सी नगरों में इकट्ठी रहती थीं। परन्तु डलहौजी के काल में मराठा राज्य बर्मा और पंजाब की लड़ाइयों के कारण सेना की संख्या बहुत बढ़ गई थी। सेना में असन्तोष की भावनाएँ भी दीखने लगी थीं। थीं। खासकर बैरकपुर के सिपाही विद्रोह से अंग्रेज चौकन्ने हो गए थे। अतः डलहौजी ने यह अनुभव किया कि एक ही केन्द्र में बहुत अधिक सिपाहियों का जमाव खतरनाक है। उसने सबसे प्रथम बैरकपुर की ही सभाओं को दूर-दूर कला दिया। उत्तर भारत पर कड़ी नजर रखने के लिए मेरठ की छावनी को नए सिरे से सुगठित किया गया और वहाँ जो सेना रखी गई वह अपने समय की एक मजबूत सेना थी।

अब एक नई उलझन पैदा हुई । अंग्रेजी सेना की छावनियाँ देश भर में बिखर गई थीं । अब यदि कहीं उपद्रव हो या सीमा पर कहीं झगड़ा उठ खड़ा हो, तो इस बिखरी हुई सेना को तुर्त-फुर्त कैसे काम में लाया जाय । जब तक यातायात के साधन सुलभ न हों, तब तक इतना बड़ा साम्राज्य कैसे काबू में रखा जायगा । यद्यपि दूरदर्शी डलहौजी ने सड़क आजम के अतिरिक्त और भी सड़कें बनवाई थीं परन्तु उसकी दृष्टि से यह यथेष्ट न था । अतः उसने रेल और बन्दरगाहों को आधुनिकतम बनाया । रेल बनाने के समय उसका दृष्टिकोण यह था कि एक ऐसी ट्रंक लाइन बनाई जाय जो प्रेसीडेन्सी के आन्तरिक मार्गों को बन्दरगाहों से जोड़ दे और साथ ही प्रेसीडेन्सियों को एक दूसरे से जोड़ दे । यह काम यद्यपि सेना की सुविधा के लिए किया गया था—पर इससे विदेशी व्यापार को भी बहुत लाभ हुआ । डलहौजी का लक्ष्य रेल द्वारा जीते हुए प्रदेशों को दृढ़ करना और साम्राज्य के हर केन्द्र को सैनिक शक्ति के प्रहार के दायरे में लाना तो था ही, इसके अतिरिक्त रेलों द्वारा इंग्लैण्ड और भारत के मूलधन को व्यापार की ओर अधिकाधिक मात्रा में उन्मुख करना भी था । उसने भारत के बन्दरगाह यूरोप के व्यापारियों के लिए उन्मुक्त कर दिए । इसका परिणाम यह हुआ कि उसके शासनकाल ही में रुई और अन्न का निर्यात चौगुना हो गया तथा विदेशी माल भी भारत में ढाई गुना आया । कच्चे माल के जाने और पक्के माल के आने का जो प्रवाह डलहौजी के प्रयत्नों से तेजी से चला तो देश के शोषण में चार चाँद लग गए । संक्षेप में डलहौजी का दृष्टिकोण यह नहीं था कि प्रजा की सुख-समृद्धि की वृद्धि हो या शिक्षा प्रसार हो । उसका मुख्य लक्ष्य यह था कि—समस्त भारत कैसे जीता जाय राज्य को कैसे स्थिर बनाया जाय और भारत से इंग्लैण्ड को अधिक से अधिक

लाभ कैसे पहुँचाया जाय। यदि अंग्रेज भारत में व्यापारी की हैसियत से, धन कमाने की नीयत से न आए होते और केवल भारत को विजय करना उनका लक्ष्य होता तो निस्सन्देह भारत का इतना शोषण न होता जितना कि हुआ। वे आए तो धन कमाने को और बन गए राजाधिराज भारत के स्वामी। इसी से कम्पनी राज्य में सबसे अधिक भारत के व्यापार और शिल्प का विनाश हुआ।

शोषण का प्रारंभ बंगाल से शुरू हुआ। वहीं से सबसे प्रथम कम्पनी का राज्य कायम हुआ। पुर्तगाल-फ्रान्स और हालैण्ड थोड़े थोड़े काल के लिए राजनीति और व्यापार में भारत में इंग्लैंड के प्रतिद्वन्द्वी रहे। पर जब प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद अंग्रेजों को बंगाल की दीवानी मिल गई, और धीरे-धीरे सब प्रतिद्वन्द्वी अन्तर्धान हो गए तो प्रथम बंगाल की और इसके बाद अन्य प्रान्तों की आर्थिक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई। और प्लासी के युद्ध के बाद सन् १८५६ तक सौ वर्षों में अकेली ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही भारत की आर्थिक भाग्यविधाता रही। जिस समय उन्हें बंगाल की दीवानी के अधिकार मिले थे—उस समय तुर्क अरब ईरानी और तिब्बत के व्यापारियों का भारत से यथेष्ट व्यापार-विनिमय होता था। बंगाल से निर्यात ही अधिक होता था। इन जानेवाली चीजों में सूत रेशम के वस्त्र चीनी नमक, पटसन और अफीम प्रथम थी। बंगाल के महीन सूती मलमल की दुनिया भर में खपत और माँग थी। खासकर यूरोप के व्यापारी उसे बहुत चाहते थे। उनके द्वारा ढाके की मलमल एक ओर जापान और दूसरी ओर हालैंड तक पहुँचाई जाती थी। उस समय बंगाल में सोना बरसता था क्योंकि विदेशियों से सोने ही में मूल्य लिया जाता था इसीसे बंगाल तब सोने का बंगाल प्रसिद्ध हो गया था। परन्तु अंग्रेजों को दीवानी मिलते

चिपके हुए—ये फाइलों के गट्ठर बगल में दबाए सुबह झपटते हुए दफ्तरों में जाते हैं और शाम को थके-मांदे घर की ओर दौड़ लगाते हैं। कीड़े-मकोड़ों की भाँति इनकी जिन्दगी है। इनकी इस जाति को अंग्रेजों ने पैदा किया है। अपने जीवन से ये असन्तुष्ट हैं। पढ़े-लिखे और विचार करने योग्य हैं पर मिरवाम और जीवन के बोझ से दबे हुए हैं।

इस प्रकार अंग्रेजों ने बंगाल में दो जातियाँ पैदा कीं। एक जमींदारों की दूसरी इन क्लर्कों की। जमींदारी प्रथा में जब उलट-फेर और उन्मूलन हुआ और क्लर्कों की कुर्सी पर जब एक पर दस टूट पड़े तो बंगाल ही में एक नए संघर्ष का जन्म हुआ और आगे चल कर ये सब क्रान्तिकारी बन गए।

डलहौजी की इस नीति का सीधा फल इंग्लैंड को मिला। भारत का भाग जमींदारों और किसानों से घिरता गया जिससे कच्चा माल विनाश होता गया, और अंग्रेज विविध रूप में कच्चा माल और पक्का सोना इंग्लैंड भेजने लगे। इन परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाया गया। ज्यों-ज्यों भारत का व्यापार चौपट होता गया—इंग्लैंड में पूंजी और इंग्लैंड का व्यापार दिगन्त व्यापी हो गया। बंगाल की ही पद्धति लगभग सारे देश में प्रसारित की गई। अंग्रेज निरन्तर भारत के कारीगरों और व्यापारियों की कठिनाइयाँ बढ़ाते चले जा रहे थे—यद्यपि अब वह पुरानी खुली डाकेजनी जरा सभ्य लूट में बदल चुकी थी—कानून कायदों के शिकंजे में फँस कर। विलायती विचार, भाषा संस्कार रहन-सहन आदि के साथ ही साथ विलायती फैशन विलास और भी बढ़ा चला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विलायती माल की माँग बढ़ती चली गई। खास कर

विलायती कपड़ों और जूतों का व्यापार खूब चमका। पर सब पर बाजी मार ले गया विलायती शराब का बाजार।

यही वह समय था जबकि इंग्लैंड का झिल्मोखोस पर लगा कर उड़ा जा रहा था और वह भारत से ढोए हुए सोने के पंखों पर उड़ रहा था। इंग्लैंड में उत्पादन की बाढ़ आ रही थी। उस समय भारत में यदि भारत के हित की चिन्ता करने वाली कोई सरकार होती, तो वह अवश्य ही कानून बना कर देश के शिल्प और व्यापार का संरक्षण करती। परन्तु यहाँ तो आदर्श अंग्रेज डलहौजी का बोलबाला था और उसने विदेशियों के लिए भारत के बन्दरगाह खोल दिए थे जिसके द्वारा विलायती माल का निर्बाध प्रवेश भारत में हो रहा था। इसका परिणाम तुरत ही यह दीख पड़ा कि भारतीय शिल्प और व्यापार चौपट हो गया, और मुर्शिदाबाद ढाका, लखनऊ, अहमदाबाद, नागपुर, मदुरा, बनारस तंजोर, पूना और काश्मीर जैसे शिल्प उद्योग के केन्द्र उजाड़ हो गए और उनके स्थान पर मानचेस्टर और लिवरपूल के कारखानों की चिमनियाँ आकाश से स्पर्द्धा करने लगीं।

जिस समय भारत में अंग्रेजों ने अपना कदम जमाया, उस समय मुगल साम्राज्य टूट रहा था। परन्तु मुस्लिम प्रभावित एक नई सभ्यता पनप रही थी। ज्यों-ज्यों कंपनी राज्य पैर फैलाता गया—मुगल प्रभाव सिमटता गया। और अन्ततः वह लाल किले की दीवारों के भीतर सिमट-सिमटा कर—सीमित रह गया। और अब तो लालकिले में मुगलों का अन्तिम चिराग टिमटिमा रहा था। जिसकी क्षीण ज्योति बुझने को अब तब हो रही थी और उसके बाद लालकिले के पट बन्द होने वाले थे।

सन् १७८४ में जब सिंधिया ने दिल्ली पर अधिकार किया था सभी शासित मुगल सम्राट के हाथ से छिन गई थी। सिंधिया ने राज्य शक्ति अपने हाथ में ले कर बादशाह शाहआलम को ६ लाख रुपए वार्षिक पेंशन बाँध दी थी—पर वह कभी भी बादशाह को समय पर नहीं मिली। १८०३ में दिल्ली पर अंग्रेजों ने कब्जा किया और शाहआलम उनके हाथों की कठपुतली बना। अंग्रेजों ने बारह लाख रुपए वार्षिक बादशाह की पेंशन नियत की। बूढ़ा और अंधा बहादुर शाह निस्सहाय था। अब मुगल सूर्य तेजी से अस्ताचल को जा रहा था। परन्तु अभागे शाह आलम और उसके उत्तराधिकारी किसी क्षीण आशा की ज्योति का सहारा ताक रहे थे। थोड़े ही दिनों बाद अंग्रेज गवर्नर जनरल ने बादशाह की परवाह करना ही छोड़ दिया। वास्तव में अब मुगल बादशाह एक निरर्थक सत्ता और अंग्रेजों के सिर पर नागहानी का भार था। शाह आलम के उत्तराधिकारी ने लंदन के द्वार खटखटाने राजा राममोहनराय को भेजा—परन्तु बेकार, क्योंकि अंग्रेजों के और बादशाह के दृष्टिकोण ही भिन्न हो गए थे। बादशाह अभी भी अपने को भारत के अधिराज समझते थे। परन्तु अंग्रेज उसे महज पुराने जमाने की कुतुबमीनार समझते थे। आरम्भ में अंग्रेजों की यह नीति थी कि बादशाह के केवल अधिकार ही छीन लिए जायें किन्तु उसकी मान-मर्यादा कायम रखी जाय। परन्तु बाद में यह ढकोसला भी उठा दिया गया और बादशाह के पद को ही अस्वीकार कर दिया गया। दूसरे शब्दों में अब तक बादशाह नवाब-बे-मुल्क बने हुए थे पर अब इतने भी न रहे।

डलहौजी चाहता था कि बादशाह लालकिले को छोड़ दें और अपने कुनबे के साथ कुतुब वाले अपने महल में चले जायें? और किले में सरकारी मेगजीन रक्खी जाय। परन्तु इसमें उसे सफलता

उसने अपने जीवन को भी खतरे में डालने का निश्चय कर लिया। मण्डूशाह से मिल कर उसने उसके मन में पश्चाताप उत्पन्न करने की चेष्टा की थी। पर कुछ तो स्वभाव दोष से और कुछ परिस्थिति के कारण मण्डूशाह विवश हो रहा था। सन्त ने समझ लिया कि डाका अवश्य पड़ेगा और वह यथासम्भव मण्डूशाह की रक्षा करेगा। दूसरे दिन उसने अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो कर यत्न से छिपाई हुई पिस्टल निकाली। उसकी भली भाँति जाँच की, और उसमें गोलियाँ भरी। और भी कुछ गोलियाँ उसने अपने झोल में डाल लीं। और वह दोपहर ढलने के कुछ बाद ही घर से निकल पड़ा। बस्ती में घूमता हुआ वह सन्ध्या से कुछ पूर्व ही मण्डूशाह के द्वार पर आ पहुँचा। उसने एक बार छिपी नजरों से उसे देखा और गम्भीर स्वर में कहा— 'कर भला, होगा भला।"

मण्डूशाह इस समय किसी से बात करना नहीं चाहता था। उसने कहा— बाबा तुम अपना रास्ता नापो मुझ तुम से फिजूल बात करने की फुर्सत नहीं है। परन्तु सन्त न उसकी रुखाई की परवाह नहीं की और कहा— 'तुम्हारे भाई का लड़का बहुत बीमार है कल मने उसे दवा दी थी। उसके बेचारे माँ-बाप बहुत दुखी हैं क्या तुमने उसे देखा अपने भाई-भावज को तसल्ली दी ?

तसल्ली दी या नहीं तुम्हें इसस क्या ?"

भाई-भाई का खून एक होता है। तुम्हार जाने से व प्रसन्न होंग। तुम दोनों भाई सुख-दुख में एक हो कर रहो यह कितना अच्छा है।

'क्या भाई ने कुछ कहा है ?

नहीं मैं ही कह रहा हूँ।

इसी समय साधु न देखा—कि दो अजनबी आदमी आ कर सामन बड़ की छाँह में खड़े हो गए। निस्सन्देह साधु ने इन्हें पहचान

लिया, वे अवश्य ही रात वाले डाकू थे। परन्तु उसने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे उसने उन्हें देखा ही नहीं। उसने मण्डूशाह के घर की ओर बढ़ते हुए कहा—'आओ आओ अपने भाई के बीमार बच्चे को देख आओ।

परन्तु मण्डूशाह तेजी से घर के भीतर घुस गया। और सन्त ने मण्डूशाह के द्वार पर जा कर कुण्डा खटखटाया। मण्डूशाह ने आ कर द्वार खोला और आदरपूर्वक सन्त को भीतर ले गया। बच्चे की दशा में कोई सुधार न था। वह रह रह कर कराह रहा था। सन्त ने उसे दवा दी। और कहा—आज रात भर मैं तुम्हारे घर रहूँगा। तुम्हारे बच्चे को देखूँगा।

कृतज्ञता से मण्डूशाह गद्गद् हो गया। रात हो आई। सन्त ने मण्डूशाह के साथ भोजन किया और द्वार के पास एक चटाई पर सो रहा। घर में मण्डूशाह के अतिरिक्त दो नौकर और थे। दोनों जवान आदमी थे। वे दोनों भी काम-धन्धे से निवृत्त हो कर सन्त के पास ही सो रहे।

रात बीतती गई और सन्त सचेत रहा। बच्चा रह रह कर कराह रहा था और मण्डूशाह की पत्नी उसके बिछौने पर चुपचाप बैठी कभी-कभी आँसू बहा लेती थी।

आधी रात हुई और सन्त ने उठ कर प्रथम बच्चे को ध्यान से देखा और दवा दी। इसी समय मण्डूशाह भी उठ बैठा। उसने कातर कण्ठ से पूछा—'कैसा है मेरा बच्चा ?'

परन्तु सन्त अभी उत्तर न दे पाया था कि द्वार पर एक खटका हुआ। किसी ने किवाड़ों पर कुल्हाड़े का प्रहार किया था। मण्डूशाह ने चौंक कर कहा—'यह कैसा शब्द हुआ ?"

"अभी हम देखेंगे। तुम इन दोनों नौकरों को जगा दो।

"क्या कुछ खतरा है ?'

'रात अन्धेरी है। हो सकता है। पर डरने की कोई बात नहीं। तुम्हारे पास शस्त्र हैं ?

'दो तलवारें हैं।"

'तो एक तुम ले लो। एक उस जवान को दो। और चुपचाप देखो क्या होता है।

मण्डूशाह घबरा गया। नौकरों ने तलवार और लाठी सम्भाली और ललकारा— 'फाटक पर कौन है?

इसी समय फाटक टूट गया और द्वार खुलने का शब्द हुआ। साथ ही दो आदमी धमाधम सहन में आ कूदे।

सन्त मण्डूशाह को खींच कर आड़ में ले गया और वस्त्रों से अपना पिस्तौल निकाला। परन्तु मण्डूशाह एकदम चिल्ला कर सामने की ओर दौड़ा कि एक डाकू का भाला उसके पेट में घुस गया। इसी समय सन्त ने गोली दाग दी। मण्डूशाह और डाकू एक साथ गिरे।

मण्डूशाह के गिरते ही उसकी पत्नी रोती-चीखती ऊपर दौड़ी। इधर सन्त ने और एक गोली दागी। एक और डाकू ढेर हो गया। उधर दोनों नौकर लाठी और तलवार घुमाते हुए जोर-जोर चिल्लाने लगे।

डाकुओं के पैर उखड़ गए। उन्हें विश्वास नहीं था कि यहाँ उनका इस प्रकार स्वागत होगा। वे भाग निकले।

सन्त ने भागते हुआ पर एक और गोली दागी और वह झपट कर मण्डूशाह के निकट पहुँचा। भाला उसके पेट में पार हो गया था। भाले के फल के साथ ही उसकी आँतें भी बाहर निकल आईं। मण्डूशाह उल्टी साँसें लेने लगा। उसकी स्त्री जोर-जोर से रोने लगी।

शीघ्र ही मण्डूशाह और चार-चार पड़ोसी आ गए। सन्त की चेष्टाएं कारगर न हुई। और मण्डूशाह ने दम तोड़ दिया। मण्डूशाह ने बहुत फूं-फां की। भाई के लिए रोने का भी अभिनय किया। मण्डूशाह की स्त्री रोते रोते बेहोश हो गई। उसे मण्डूशाह की पत्नी की मदद से पलंग पर लिटा कर सन्त ने उसका उपचार किया। फिर वह चुपचाप बच्चे की चारपाई के पास आ बैठा। मण्डूशाह डाकुओं को गालियां दे रहा था। बदला लेने की बात कह रहा था। सन्त चुप था। वह सत्य बात देख चुका था। वह सोच रहा था अब इस बदनसीब औरत का क्या होगा?

दिन निकल आया। पास-पड़ोस के बहुत आदमी आ जुटे। पुलिस भी आ गई। पुलिस वाले मण्डूशाह की लाश का थाने उठा ले गए। उसकी पत्नी का हाल-बेहाल था। बच्चा सांघातिक स्थिति में पड़ा था। अब सन्त कभी बच्चे की, और कभी उसकी मां की सुश्रूषा कर रहा था।

पुलिस ने डाकुओं का पता लगाते हुए यह भी सुराग निकाला कि मण्डूशाह के घर में डाकू छिपे थे। सन्त ने पुलिस को सब हाल बता दिया। पुलिस मण्डूशाह को पकड़ ले गई।

मण्डूशाह की पत्नी को ढारस बंधा कर तथा बालक की शुश्रूषा की ओर ध्यान दिला कर सन्त धीरे-धीरे घर से बाहर हो गया।



२१

यद्यपि भारतीय जन सन्त का नाम नहीं जानते थे और सब कोई उसे गोरा सन्त ही कहते थे, पर उसका नाम संन्टजान था।

सन्त की कोई कोशिश कारगर नहीं हुई और मण्डूशाह का वह बालक भी मर गया। घर में असहाय मण्डूशाह की विधवा स्त्री रह गई। उसके दुःख-दर्द का अन्त न था। उसके घर का चिराग बुझ चुका था। यद्यपि डाके की लूट से उसका घर सन्त की कृपा से बच गया था परन्तु वह तो लुट चुकी थी। उसका हृदयधन उसका पति मर चुका था और उसकी आँखों का सहारा पुत्र भी उससे छिन चुका था। परन्तु विपत्ति का यहीं खात्मा नहीं हुआ। पुत्र के मरते ही मण्डूशाह ने भाई की सम्पत्ति पर अपना दावा किया। उसका कहना था—भाई का कोई कानूनी वारिस नहीं है अतः मैं ही उसके सब धन-दौलत का स्वामी हूँ। मुकदमा कमिश्नर साहब बहादुर के इजलास में चला। उन दिनों एक पण्डित और एक मौलवी अदालत में मजहबी कानून में जज की सहायता करने को हाजिर रहता था। पण्डित ने धर्मशास्त्र की रू से कहा दोनों भाइयों में विधिवत बटवारा नहीं हुआ। बटवारे का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं है इसलिए भाई की सम्पत्ति पर भाई का अधिकार है। स्त्री रोटी कपड़े पाने की हकदार है बशर्ते कि उसका चालचलन खराब न हो और वह मृत पुरुष की विधवा की भाँति विधवा के सब धर्मों और नियमों का पालन करे।

परन्तु मण्डूशाह उस असहाय स्त्री को रोटी-कपड़ा भी देना नहीं चाहता था। अतः उसने उसके चाल चलन पर भी गंदे आरोप लगाए। सन्त ने उसकी बहुत सहायता की। बहुत दौड़-धूप की। पर मण्डूशाह ने सन्त की यह दौड़-धूप ही उस भाग्यहीन स्त्री के विरुद्ध प्रमाण रूप में उपस्थित की। उसने कहा यह गारा बदमाश ही सन्त बन कर उसका धर्म नाश कर रहा है। वास्तव में उसका उसी से गुप्त सम्बन्ध है। इस अपवाद से खिन्न हो कर सन्त ने उसके घर

आना-जाना भी छोड़ दिया । अब बेचारी स्त्री का यह सहारा भी गया । और एक दिन सरकारी प्यादों की मदद से मण्डूशाह ने अपने भाई की विधवा को घर से निकाल बाहर कर दिया । उसका सब माल-मता हथिया लिया । एक प्रतिष्ठित साहूकार की सुशीला धर्मपत्नी निरपराध अपना सब कुछ गँवा कर पथ की भिखारिणी बन गई ।

प्रभात का समय था । सूर्योदय हुए काफी देर हो गई थी । पर अभी कोहरा चारों ओर छा रहा था । सर्दी बहुत थी । सन्त अपना लबादा लपेटे आग के सामने बैठा कुछ लिख रहा था । उसने अनुभव किया—कोई आया है । उसने आँख उठा कर देखा एक स्त्री बहुत धीरे-धीरे उसकी कुटी की ओर आ रही है । सन्त खड़ा हो गया । पास आने पर उसने देखा—मण्डूशाह की स्त्री थी । लाज और सकोच से वह मरी जा रही थी और दुःख से उसका चेहरा मुर्झा कर सूख गया था ।

सन्त ने कहा— 'तुम आई हो ?"

हाँ मैं हूँ ।"

"मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?

बहुत सेवा की आपने । अब मैं आपकी सेवा करने आई हूँ ?

'क्या कहा ?"

'क्या आपने नहीं कहा था कि आप का घर है बकरी है खेत है पर स्त्री नहीं है ?

ओह वह तो हँसी की बात थी ।

"तो अब एक स्त्री सचमुच आपकी शरण आ गई है । आपकी यह कमी पूरी हो गई ।

"लेकिन क्या तुम

"मैं यहाँ आपके साथ रहने आई हूँ।"

'परन्तु मैं एक साधु हूँ। मेरे पास रुपया-पैसा नहीं।"

'मैं अपने परिश्रम से अपना पेट भर लूँगी। आप पर मेरा कोई भार नहीं होगा।

'लेकिन तुम्हारा घर-बार?

"सब मेरे देवर ने छीन लिया।

"पर वह तुम्हें खाना-कपड़ा दे सकता था।

'इससे बचने के लिए ही उसने आपके साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा था।

'यह तो बिल्कुल झूठ बात है। मुन्ना गवाह है।

'सो अब वह सच्ची होगी। मेरा भी भगवान् है। भगवान् ने मुझे जो राह दिखाई है मैं उसी पर चली हूँ।

'लेकिन यह मुमकिन कैसे हो सकता है?

'हो ही गया। मैं आ गई। अब यहाँ से जाऊँगी नहीं।

'तुमने बहुत जल्दी में बिना सोचे-विचारे यह फैसला किया है। मेरे साथ चलो मैं मण्डूशाह को समझाऊँगा। तुम अपने घर में रह सकती हो।

तो आप एक अभागिनी स्त्री को शरण नहीं दे सकते?'

मैं न यह बात नहीं है। मेरा मतलब है

आपका मतलब जो कुछ भी है। मैं आपकी शरण आई हूँ, किन्तु आप पर भार बन कर नहीं। एक बार पुरुष की भाँति यदि आप मुझे शरण में रखते हैं तो ठीक है वरना मैं अभी मनीतास में जाकर डूब मरूँगी। मण्डूशाह के घर नहीं जाऊँगी।

समझाने से मण्डूशाह मान जायगा। मैं गाँव के और तुम्हारी बिरादरी के पंच बुलाऊँगा।"

"आपको शायद यह नहीं मालूम कि मय्यूशाह ने मुझसे क्या कहा है ?"

"क्या कहा है ?'

"वह मेरे साथ अपना अवैध सम्बन्ध कायम करना चाहता है। उसका कहना है कि यदि यह बात मजूर हो तो वह मुझे रख सकता है। प्रथम तो मेरा धर्म मेरे साथ है। दूसरे मुझ और आपको भी मालूम है कि मेरे पति की हत्या का जिम्मेदार तो वही है। खुद उसने मेरा सर्वस्व भी हरण किया है। भला उस पशु के साथ मैं रह सकती हूँ ?"

'किन्तु यहाँ मैं अकेला हूँ। मेरे यहाँ दूसरी कोई स्त्री नहीं है, यहाँ तुम कैसे रह सकती हो ?

दूसरी स्त्री की यहाँ क्या जरूरत है ? यहाँ तो एक ही स्त्री की कमी थी, वही कमी मैं पूरी कर रही हूँ। बस, आप और मैं दोनों यहाँ रहेंगे।'

'मगर किस तरह ? मेरा खुदा मुझे न बख्शेगा।

'क्यों नहीं। मेरा भगवान् तो मेरी इच्छा से सहमत है। आपका खुदा क्यों नहीं है।

'तो क्या तुम चाहती हो कि तुम

'हम पति-पत्नी की भाँति रहेंगे, कहाँ है आपका खुदा, मुझे बताइए। मेरा परमेश्वर यह है। उसने छाती में छिपी छोटी-सी शालिग्राम की मूर्ति निकाल कर दिखाई। आइए, अब हम भगवान और आपके खुदा के सामने खड़े होकर प्रतिज्ञा करें कि हम परस्पर पति-पत्नी हैं। और जब तक जिन्दगी है, हमें कोई ताकत एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती।'

'माई गाड यह तुम क्या कह रही हो। मैं सबत्यागी साधु

साधु तो सज्जन को कहते हैं । आप साधु हैं तभी तो मैं यहाँ आई हूँ । मेरे साथ रहने से आपका साधु-व्रत भंग नहीं होगा । हम गृहस्थ साधु बनेंगे । दोनों मिलकर दीन-दुखियों की सेवा करेंगे । आप औषध बाँटना मैं उनकी सेवा करूँगी ।

सन्त के दिल की धड़कन बढ़ गई । बहुत देर तक वह गहरे सोच में खड़ा रहा ।

साहूकार की पत्नी ने कहा क्या सोच रहे हैं आप ?

'यहाँ मेरे दोस्त बुक साहब हैं मैं उनकी सलाह लूँगा ।'

"तो उन्हें अभी यहीं बुलाइए ।

सन्त ने संक्षेप में बुक साहब को आकर सब हाल सुना दिया । सुन कर बुक साहब उठकर सन्त की कुटिया में आ गए । क्षण भर उन्होंने गौर से साहूकार की पत्नी की ओर देखा । पातिव्रत की आभा से उसका मुँह जगमगा रहा था । बुक साहब के होंठों पर मुस्कान फैल गई । उन्होंने कहा— 'तुम दोनों मेरे साथ आओ, मेरे बच्चो ।

और वह सन्त सचमुच एक बच्चे की भाँति बुक साहब के पीछे आ खड़ा हुआ उसके पास ही वह स्त्री भी । बुक साहब ने उन्हें ईसामसीह के क्रास के सम्मुख खड़ा करके दोनों के हाथ मिला दिए और कहा— आज से तुम दोनों खुदा मसीह और दुनिया के आगे पति-पत्नी की भाँति रहो जब तक जीवित रहो ।"

सन्त घुटनों के बल मसीह के क्रास के सम्मुख झुक गया और उस स्त्री ने अपने ठाकुर की स्थापना क्रास के निकट करके धरती पर माथा टेककर भगवान् को प्रणाम किया ।

बुक साहब ने इस शुभ विवाह के उपलक्ष्य में सन्त की कुटिया में बैठकर मीठे टुकड़े खाए, और इसके बाद इस अद्भुत सम्पत्ति

की नवीन दिनचर्या शुरू हुई। दूसरे दिन नैनीताल में भारतीय और अभारतीय सभी लोगों में इस विवाह के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की चर्चा होने लगी।



२७

नैनीताल ही में नहीं दूर-दूर तक इस सन्त दम्पति का यश विस्तार हो गया। बुक साहब के उद्योग से उसके पति को बहुत-सी सम्पत्ति उस मिल गई तथा सरकार ने भी उन्हें यथेष्ट सहायता दी। बुक साहब ने आर्थिक सहायता ही न दी सन्त की कुटिया को एक विशाल गिरजे के रूप में परिवर्तित कर दिया। अब प्रति रविवार को वहाँ उपासना होती। स्वयं सन्त धर्मोपदेश देते। उनकी दृष्टि उदार थी। भारतीय और यूरोपियन दोनों उनकी उपासना में समान भाग लेते। गिरजे के साथ एक अच्छा अस्पताल और एक प्रसूति-गृह भी स्थापित हो गया। वहाँ गरीबों को मुफ्त दवा, जर्राहगिरी और अन्य उपचार होते थे। इस अस्पताल की ख्याति सरकारी अस्पताल स भी अधिक बढ़ गई। दोनों सन्त दम्पति दिन-रात दीन-दुखियों की सेवा करते उनक दुख-दर्द सुनते और उन्हें धर्म का उपदेश देते। यद्यपि वह स्त्री अभी भी अपने ठाकुर पर श्रद्धा रखती थी पर अब बहुत से हिन्दुस्तानी लाग ईसाई बन चुके थे और बनते जा रहे थे। वे सब उनके गिरजे में आते और सन्त की भाँति उनकी पत्नी को भी श्रद्धा भाव से देखते थ। यूरोपियन पादरियों न इस विवाह का निषेध किया था—परन्तु वह शीघ्र दब गया। दोनों न अपनी सब सम्पत्ति धर्म के अर्पण कर दी

अब चर्च की अपनी आमदनी भी बहुत बढ़ गई थी। बुक साहब ने बड़ी लगन से उसका नक्शा बनवाया और उसकी इमारत खड़ी की।

यद्यपि सन्त एक ईसाई मिशनरी थे परन्तु उनके विचार उदार थे। वे लोगों को ईसाई बनने की प्रेरणा नहीं देते थे वे उन्हें भलाई की ओर लगाते थे। भले बनने का उपदेश देते थे। मग्घूशाह को उसकी करनी का फल शीघ्र मिल गया। उसके घर डाका पड़ा और उसका सब मालमता लुट गया। बाद में एक जाल के मामले में उसे जेल हो गई।

सन्त का प्रभाव यूरोपियनों और भारतीयों पर समान था। पर वह भारतीय दलितों ही का सदा पक्ष लेते और उनकी सेवा करते थे। हिन्दू भी इस ईसाई सन्त और उसके चर्च को दर्शन दूर-दूर से आते थे जहाँ सबको मोक्ष और विश्राम मिलता था।

आज भी यह सन्तपाल का चर्च दुर्गाहिम की ऊँची पहाड़ियों में ऊँचे-ऊँचे देवद्रुमों की स्पर्धा-सी करता हुआ इस गोरे सन्त की यशगाथा मौन भाषा में बखानता है।



२८

सन् १८५७ का नया दिन इस बार कलकत्ते में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। वास्तव में यह ब्रिटिश साम्राज्य का शताब्दी-समारोह था। प्लासी के युद्ध को सौ बरस बीत रहे थे और सम्पूर्ण भारत में अखण्ड ब्रिटिश साम्राज्य का बोलबाला था। डलहौजी के महान् कार्य मूर्तरूप धारण कर चुके थे विज्ञान की नई देन— रेल तार, डाक, नहर और दूसरी राज्य व्यवस्थाएँ अब भारत में

एक समृद्ध साम्राज्य की रेखाएँ बना चुकी थीं । यद्यपि भारतीय मन खिन्न थे और अग्रज मन में समझते थे कि चाहे जब विस्फोट हो सकता है, पर डलहौजी और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को इसकी परवाह न थी । डलहौजी का कार्यकाल अब समाप्त हो रहा था । और वह अपने अमर कारनामे भारत में स्थापित करके जाने की तैयारी कर रहा था । दूसरी ओर मुगल बादशाह, राजा और महाराजा, व्यापारी और शिल्पी प्रजा और राजकर्मचारी सबके मन में अविश्वास और सन्देह तथा भय भरा था । पर अंग्रेजों को इसकी चिन्ता न थी । और इस बार वे धूमधाम से बड़ा दिन मनाने की तैयारियाँ कर रहे थे । इस बड़े दिन के समारोह में सम्मिलित होने दूर-दूर के अंग्रेज भी एकत्र हुए थे । कमाण्डर-जनरल मेक्डानल्ड और उनकी पत्नी सुभद्रा भी आई थी ।

गवर्नमेंट भवन बड़ी शानदार रीति से सजाया गया था । हजारों फानूस रोशन थे । अनेक बाजे बज रहे थे । बड़े भारी डिनर की तैयारियाँ थीं । बहुत-सी अंग्रेज महिलाएँ अपनी सज-धज दिखाने आई थीं । शराब और नाच रंग का दौर-दौरा था । कर्नल ह्विअरर्स की मेम साहब न अपने सौन्दर्य और सज-धज से यहाँ भी रंग जमाया हुआ था । उनके चारों ओर सुन्दरियों का जमघट लगा था जो अपनी-अपनी पोशाकों और यौवनों की बहार दिखा रही थीं । अभी साढ़े नौ बज थे । झाड़-फानूस जगमग कर रहे थे । उसकी झिलमिल रोशनी में सुन्दरियों के मुखमुट का दिखाव द्विगुण हो रहा था । जमीन पर कीमती कालीन बिछे थे और पुष्पदानों में बड़-बड़े ताजे फूलों के गुलदस्ते सज थ । रंग-बिरंगे पर्दों में छन कर फानूसों की रोशनी अजब बहार दिखा रही थी । बाजों की सुरीली ध्वनि चित्त को उल्लास रही थी । बालरूम में नाच की तैयारी थी । सब मेहमान एक-एक

करके आ चुके थे। गवर्नर-जनरल डलहौजी यद्यपि अस्वस्थ थे, पर वे खूब भड़कीली पोशाक पहने सुन्दरियों से हँस-हँस कर हाथ मिला रहे थे। इन सुन्दरियों की शिरोमणि मडम हिअरर्स बड़े ही नाज-नखरे से मिलने वालों का सलाम ले तथा हाथ मिला रही थीं। इस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में प्रेम की तरंगें उठ रही थीं। उसके गाउन का निचला भाग कालीन पर घसिट रहा था। उसकी टोपी एक दम सफेद थी जिस पर शुतरमुर्ग का पर बहार दिखा रहा था। उसके हाथों में एक छोटा-सा हाथी दाँत का सुन्दर पंखा था। जिससे वह जब तब अपने मुखमण्डल को ओट में कर लेती थी।

मेहमानों का तांता लगा था। इसी समय एक दूसरी षोडशी ने प्रवेश किया। इसके नख शिख‌मय अंगसौष्ठव को देखकर लोग चकित रह गए। यह किशोरी सर डगलस की पुत्री थी जो अभी विलायत से आई थी। सर डगलस इस समय कलकत्ते में चीफ जस्टिस थे। इस किशोरी के आने से मिसेज हिअरर्स का रंग फीका पड़ गया। जो युवतियाँ उस पर नजर गड़ाती थीं वह मिस डगलस से जान-पहचान करने उधर को चल दीं। दो अधेड़ स्त्रियाँ उसके पास रह गई थीं। एक ने कहा— 'इस छोकरी पर तो खूब जोबन खिला है पहले इसे कभी नहीं देखा।

'देखती नहीं से इसी सप्ताह तो इस नए माल का चालान आया है।

नया माल तो है पर गाहक जुटे तो बात है।

'ग्राहकों की क्या कमी है। देखती नहीं। लोग उधर ही टूट रहे हैं।'

न्‍रा रही हूँ। लेकिन वह काली मेम कहाँ है?'

"ओह ! मेकडानल्ड की बीबी ? वह क्या सा कर यहाँ अंग्रेजों की मोहब्बत में आयगी । बेचारी हिन्दुस्तानी चुहिया ।

'तो इस से क्या ? मुझ उस काली कुतिया को सलाम करना होगा ?" दो चार और स्त्रियाँ इस दिलचस्प वातचीत में भाग लेने आ जुटीं ।

एक ने कहा 'सचमुच यह तो बड़ी शर्म की बात है । भला हिन्दुस्तानी औरत का यहाँ क्या काम ?

'लेकिन वह क्या बहुत काली है ?

मैं ने तो देखा नहीं । काली है कि पीली ।

'पर वह यहाँ आने का साहस नहीं कर सकती । अभी उस भपड़ स्त्री के मुँह से यह बात निकली ही थी—कमाण्डर-जनरल मेकडानल्ड के साथ शुभदा ने प्रवेश किया । मेकडानल्ड अपनी पूरी फौजी वर्दी में था और शुभदा शुद्ध भारतीय वेश में । उसने मुर्शिदाबाद की बनी एक कीमती साड़ी नफासत से पहनी थी । हाथों में हाथी दाँत का लाल चूड़ा और माँग में सिन्दूर । एक भद्र मोहक भारतीय महिला के रूप में वह धीर मन्थर चाल से चली आ रही थी । एक बार सभी का ध्यान उसकी ओर केन्द्रित हो गया । मेकडानल्ड उसे सीधे गवर्नर-जनरल के निकट ले गया । डलहौजी ने हँस कर उसका स्वागत किया । उसके मोहक रूप सुन्दर भारतीय वेश भूषा और साहसिक पुरुष ने सभी का ध्यान उस पर केन्द्रित कर रखा था ।

लेकिन मिसेज हिमरने कह रही थी— 'क्या यह काली औरत हम से भी आकर मुलाकात करेगी ?"

"क्यों ? क्या तुम इसके लिए बहुत उत्सुक हो ?

"बिल्कुल नहीं । बल्कि मैं तो विरोध करती हूँ । ये लोग इन काली औरतों से शादी करते हैं या उन्हें उनकी मोहब्बत पसन्द है तो

करें। पर वे उन्हें हमारी बराबरी में बठाते हैं यह मैं बर्दाश्त ना सकती।

'मैं भी नहीं कर सकती। पर मैं तो इस बात पर हैरान मेकडानल्ड जस अफसर को यह सूझा क्या ? क्या उस जैसे न जवान अफसर को औरतों की कमी थी। यही मिस डगमस हजार बी-जान स चाह सकती थी। सो—व लोग तो इधर। रहे हैं। अब मिलन को तैयार हो जाओ।

'क्या कयामत है मैं तो उससे मिलना मुतलक नहीं चाहत

'लेकिन जरा बात करने में हर्ज ही क्या है। दिल्लगी ही रहे मगर क्या वह हम लोगों की बोली समझ-बोल सकती है ?

न सही गूँगी की तरह इशारे ही करसी।

इतने में ही कमाण्डर जनरल-मेकडानल्ड ने आकर मुस हुए मिसेज हिक्सरस को सलाम किया तथा अपनी स्त्री से उन्हें परि कराया। जरा-सा झुक कर मिसेज हिक्सर्स ने कमाण्डर का अभिव ग्रहण किया। फिर नखरे से मुस्करा कर शुभदा की ओर संकेत के कहा—

क्या यह हमारी सोहबत पसन्द करेंगी ?

इस पर शुभदा न मुस्करा कर शुद्ध अंग्रेजी में कहा— हुज यदि आपको आपत्ति न हो।"

मिसज हिक्सरस न अपनी सखी की ओर देखा जो शुभदा क उच्चारण स चमत्कृत हो रही थी। फिर उसन वसी ही हँसी हँस कहा—

"आप की बाबत तो हम लोगों ने बहुत कुछ सुना है। लेकिन मुलाकात आज हुई।"

"यह मेरा ही कसूर है । आप जब स्वदेश से यहाँ आईं, तो मुझे ही आपसे मिलने आना चाहिए था । मेरे पति ने कहा भी—पर मैं ही कुछ संकोच में पड़ गई ।

कैसा संकोच ?"

यही कि शायद आप एक हिन्दुस्तानी औरत से मिलना पसन्द न करें ।"

'लेकिन अब कैसे आपका संकोच दूर हो गया ?

सच पूछो आप तो संकोच है ही । मैं तो अभी तक नहीं जानती कि आप मुझसे मिलकर प्रसन्न हुईं या नहीं ।

'मुझे प्रसन्नता है मैडम !"

'तो मेरा नाम कुमुदा है । यह छोटा-सा नाम याद रखिए ।

'जरूर याद रखूँगी । आपको शायद अंग्रेजों की ऐसी पार्टी में आने का ही पहला अवसर है ?

'जी हाँ पहला ही ।"

आप हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ इस प्रकार के आमोद पसन्द नहीं करतीं ।

"पसन्द क्यों नहीं करतीं । परन्तु तरीका जुदा-जुदा है । हम भारतीयों का स्त्री-समाज पुरुषों से जुदा है । अपने स्त्री-समाज में हम सब आमोद-प्रमोद करती हैं ।

"खैर, तो आज हम आपका एक हिन्दुस्तानी गाना सुनेंगी ।'

"कभी आपके घर आकर सुना दूँगी । इस प्रकार के समारोहों में पुरुषों के सामने गाने का मुझे अभ्यास नहीं ।"

"आप एक अंग्रेज अफसर की बीबी होकर भी शायद पर्दे में रहना पसन्द करती हैं ।'

"एक हद तक। हमारा यह दस्तूर है कि समाज में मिलने जुलने की एक सीमित मर्यादा है।'

'तब तो मुझे भय है कि आप हमारे अंग्रेजों के समाज में लोकप्रिय नहीं हो सकेंगी।

'हो सकता है पर मैं हिन्दुस्तानी हूँ। मैं एक अच्छी पत्नी होना ही चाहती हूँ।

'इसके लिए कमाण्डर-जनरल महाशय हमारी बधाई के पात्र हैं। उन्होंने हँसकर मेकडानल्ड की ओर देखा जो चुपचाप दोनों की बातें सुन रहे थे।

इस समय मेकडानल्ड ने कहा— अरे वह देखो बंगाल पदल सेना के कमाण्डर आ रहे हैं। मुझे उचित है कि मैं आगे बढ़कर उनका स्वागत करूं। वे मेरे पुराने दोस्त हैं। मैं अभी आया शुभदा देवी तब तक तुम मिसेज हिक्सर्स से बात करो।

और वे लपकते हुए नवागन्तुक अफसर की ओर चले। इस आदमी की आयु पचास के लगभग होगी। परन्तु वह लम्बा-तगड़ा हृष्ट-पुष्ट आदमी था। उसके रंग-ढंग से कुछ घमण्ड और अहम्मन्यता अवश्य नजर रही थी। परन्तु मेकडानल्ड ने आगे बढ़कर हँसते हुए कहा— आप हैं जनरल केनेडी बहुत दिन बाद मिले। कहिए मिजाज तो अच्छे हैं।

"आपसे मिलकर बहुत खुशी हुआ जनरल मेकडानल्ड। लेकिन आपकी वह हिन्दुस्तानी बीबी कहाँ हैं? मैं तो उनसे मिलने को उत्सुक हूँ।

'वह क्या सामने खड़ी हैं। मिसेज हिक्सर्स से गप्पें लड़ा रही हैं।

"सचमुच? ब्यूटीफुल। जनरल मेकडानल्ड मैं आपको बधाई देता हूँ और शुक्रिया अदा करता हूँ।

'शुक्रिया किसलिए जनरल ?'

'कि तुमने लार्ड ईसूमसीह की सच्ची सेवा की। एक गुमराह हिन्दुस्तानी को क्रिश्चियन बनाकर उसका नर्क से उद्धार किया। मगर यह मैं क्या देख रहा हूँ लेडी मेकडानल्ड तो बिल्कुल हिन्दुस्तानी लिबास में है।"

'जी हाँ! क्या आप नहीं जानते कि वह एक खानदानी ब्राह्मण की बेटी है।'

मान्सन्स! जनरल मकडानल्ड! यह आपने क्या नहीं बात कही। ये बदनसीब हिन्दुस्तानी कितने गन्दे और गुमराह हैं। मैं तो समझता था कि आपने उसे एक आदर्श क्रिश्चियन नहीं बना दिया होगा।

क्रिश्चियन तो नहीं पर वह एक आदर्श हिन्दू नहीं है।

'मा गाड! आप तो कुछ दूसरे ही टोन में बोल रहे हैं। खुदा के लिए आप यह तो फर्माइए कि आप खुद भी क्रिश्चियन हैं या नहीं?

'यकीनन मैं क्रिश्चियन हूँ।

'तो यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि आप क्रिश्चियन हों और आपकी बीवी हिन्दू ?"

पहले मैं भी यह नहीं समझता था कि यह कैसे मुमकिन है। पर अब समझ गया।

'खुदा की कसम! आप पर जरूर शैतान का साया पड़ा है। तभी आप ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं।

मैं तो ऐसा नहीं समझता। मेरे होश हवास बखूबी दुरुस्त हैं।

तो इसका मतलब यह है कि आप ईसाई धर्म को अच्छा नहीं समझते।"

"बहुत अच्छा समझता हूँ और मैं क्रिश्चियन हूँ—परन्तु मैं एक सैनिक अफसर हूँ—मिशनरी प्रचारक नहीं।'

मैं भी एक अफसर हूँ जनरल मेकडानल्ड परन्तु मैं पहले मिशनरी हूँ, बाद में अफसर। सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ईसाई बनाना मेरा मिशन है और मैं लगातार अट्ठाइस साल से हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ईसाई बनाने का काम कर रहा हूँ। हिन्दू या मुसलमान जो भी सिपाही ईसाई बन जाता है म उसे तुरन्त जमादार या हवलदार बना देता हूँ। चाहे योग्य हो या न हो।

'लेकिन आप क्या समझते हैं कि ऐसा करके आप अपने सैनिक दायित्व से विचलित नहीं हो रहे हैं?

'तनिक भी नहीं। अजी इन मूर्तिपूजक जाहिल हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आत्मा को शैतान के पंजे से बचाना भी मेरी मिलिट्री ड्यूटी है। मैं ऐसा मानता हूँ। फिर इसके अतिरिक्त एक और भी तो बात है जनरल!

'वह क्या?

'किसी रोज हिन्दुस्तान में हम अंग्रेजों के खिलाफ बगावत फैल जाए तो हमें ये ईसाई देसी सिपाही सबसे अधिक सहायता दे सकते हैं।

'मुझे अफसोस है जनरल कि मेरे विचार तुमसे नहीं मिलते। मैं तो यही समझता हूँ कि धर्म के मामले में हम लोगों को निरपेक्ष और उदार होना चाहिए।

जनरल कुछ कहना चाहता ही था कि भोजन की घण्टी बज गई।

मकडानल्ड ने कहा—"अभी और बातें फिर होंगी जनरल अब तो तुम बंगाल पदम रेजीमेंट में तैनात होकर आ ही गए हो। मैं भी १४ नं० पल्टन का कमाण्डर हूँ।

"तब तो मुझे खुशी है कि जल्दी-जल्दी मुलाकात होगी और तब शायद तुम्हारी पत्नी को अच्छी त्रिदिवयन लेडी बना सकूँ।

'मुझे प्रसन्नता होगी अवश्य। परन्तु यह समय नहीं है।' इतना कहकर वे सुभदा की ओर चले। वह उनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। उसने कहा—'जरा ध्यान रखना मेरे सामने कोई कबाब न आने पाए।'

'मुझे ध्यान है। तुम इतमीनान रखो। मैंने पहले ही से प्रधान खानसामा से कह दिया है। उसने अवश्य एक-दो डिश तुम्हारे लिए बंगाली ढंग की बनाई होगी।

इसके बाद सब कोई अपने-अपने जोड़े के साथ भोजन की टेबुल पर बैठे। टेबुल पर बहुत सी जिन्सें परसी गई थीं। तथा अब झाड़ फानूसों के प्रकाश में बोतलों में भरी हुई शराब सोने की तरह चमक रही थी। टेबुल पर भाँति भाँति की शराब भाँति भाँति के पक्व मांस तथा पकवान और फल भरे हुए थे। बाहर बैंड बज रहा था और भीतर छुरी चम्मचें ताल दे रही थीं। यह सन् सत्तावन का नया दिन था। सन् सत्तावन की पहली जनवरी।

२६

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कम्पनी के सैनिकों के पास ब्राउन बेस बन्दूकें थीं। उन्हीं से उन्होंने बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जीती थीं। परन्तु सन् १८५३ में एक नए प्रकार की परिष्कृत बन्दूक का प्रयोग हुआ था। जिसका नाम इन्फील्ड राइफल था। इस राइफल में कुछ नए सुधार किए गए थे और वे अपेक्षाकृत शीघ्र और लम्बी

मार करती थीं। सन् १८५६ में भारत में उसका प्रयोग आरम्भ किया गया। इस राइफल में एक नए प्रकार के कारतूस लगते थे—जिनमें ग्रीस लगा हुआ था। शुरू में वे कारतूस इंग्लैंड से आए थे बाद में इनको तैयार करने के लिए—मेरठ दमदम और कलकत्ता में कारखाने खोल गए और इस नए कारतूस तथा राइफलों का इस्तेमाल करना सीखने के लिए कुछ सैनिक दमदम स्यालकोट अम्बाला के प्रशिक्षण केन्द्रों में भेजे गए थे। ये कारतूस दाँत से काट कर प्रयोग किए जाते थ।

दमदम में एक दिन एक ब्राह्मण सिपाही—जो प्रशिक्षण के लिए बैरकपुर से आया था—कुएँ पर स्नान कर रहा था। तभी एक महतरने जो वहाँ के कारतूस बनाने के कारखाने में नौकर था—ब्राह्मण सिपाही से पीने को पानी माँगा। परन्तु परम्परा के अनुसार ब्राह्मण न मेहतर को पानी नहीं पिलाया यह कह कर इन्कार कर दिया कि महतर क पानी पिलान स उसका लोटा अशुद्ध हो जायगा। इस पर महतर ने व्यंग स हँस कर कहा– 'महाराज हमको पानी पिलाने में तो आपका लोटा अशुद्ध होता है पर तुम लोग जो दाँत स काट कर कारतूस लगाते हो तो तुम्हारा धर्म कहाँ रहा? उसमें तो सूअर और गाय की चर्बी लगती है।

मेहतर तो यह बात कह कर वहाँ से चला गया। पर वह ब्राह्मण सिपाही यह सुन कर जड़ हो गया। जब उसन सिपाहियों से यह बात कही तो सिपाहियों में बड़ी बेचनी फैल गई। आग की तरह यह खबर प्रशिक्षण केन्द्र में फैल गई। अंग्रेज अफसरों तक के कानों में भी यह बात गई। इस घटना के दूसरे दिन दमदम मम्बेग्री डिपो के संचालक मेजर ब्रोन्टीन न सारे भारतीय सिपाहियों की परेड कराई। जिसमें सिपाहियों से नई राईफल में दाँत से काट

कर कारतूस लगाने तथा उन अशुद्ध कारतूसों को हाथ से छूने से इन्कार कर दिया। मेजर बोन्टीन ने इस घटना की रिपोर्ट अपने अफ़सर को भेज दी। यह घटना २२ जनवरी के दिन घटी। इन कारखानों में जो ये कारतूस बन रहे थे—उनके लिए ग्रीस और चर्बी की सप्लाई का ठेका एक बंगाली ब्राह्मण को दिया गया था। यह ब्राह्मण ठेकेदार भेड़-बकरी की मँहगी चर्बी न लेकर सूअर और गाय की सस्ती चर्बी सप्लाई करता रहा था और उसी का प्रयोग इन कारतूसों में होता रहा था।

बाद में कलकत्ते के मेजर फोर्ड ने इस बात की जाँच के लिए एक कमीशन बैठाया तो उसे सलाह दी गई कि एक हिन्दू और एक मुसलमान को भी इस कमीशन में नियुक्त किया जाना चाहिए। किन्तु शस्त्रशाला के अधिकारी इससे सहमत नहीं हुए। फलतः इन कारतूसों का वास्तविक रहस्य सिपाहियों से छिपा रहा और असंतोष के साथ उनके सन्देह बढ़ते ही रहे। जिसे देखकर कर्नल टेकर ने सैनिक बोर्ड को चेतावनी दी कि यदि भारतीयों को ये कारतूस दिए गए तो उसके बुरे परिणाम निकलेंगे। इन कारतूसों में चर्बी की तीव्र दुर्गन्ध आती थी। और ये ही कारतूस दिल्ली और उत्तर भारत के दूर प्रदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेज दिए गए।

जनरल हियरसे ने जो बरकपुर में कमाण्डण्ट आफीसर था—यह सुझाव दिया था कि सिपाहियों को कारतूसों पर अपनी इच्छानुसार ग्रीस लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए। परन्तु २८ जनवरी तक इस सुझाव पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। लेफ्टीनेण्ट के रिपोर्ट देने और कलकत्ते से सरकार का उत्तर आने में ६ दिन बीत गए। इस बीच सिपाही अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे और वे बारकों में भरकर यह चर्चा करने लगे कि सब सिपाहियों को भ्रष्ट करने

मार करती थीं। सन् १८५६ में भारत में उसका प्रयोग आरम्भ किया गया। इस राइफल में एक नए प्रकार के कारतूस लगते थे—जिनमें ग्रीस लगा हुआ था। शुरू में वे कारतूस इंग्लैंड से आए थे, बाद में इनको तैयार करने के लिए—मेरठ दमदम और कलकत्ते में कारखाने खोले गए और इस नए कारतूस तथा राइफलों का इस्तेमाल करना सीखने के लिए कुछ सैनिक दमदम स्यालकोट अम्बाला के प्रशिक्षण केन्द्रों में भेजे गए थे। ये कारतूस दाँत से काट कर प्रयोग किए जाते थे।

दमदम में एक दिन एक ब्राह्मण सिपाही—जो प्रशिक्षण के लिए बरकपुर से आया था—कुएँ पर स्नान कर रहा था। तभी एक महतर ने जो वहाँ के कारतूस बनाने के कारखाने में नौकर था—ब्राह्मण सिपाही से पीने को पानी माँगा। परन्तु परम्परा के अनुसार ब्राह्मण ने महतर को पानी नहीं पिलाया यह कह कर इन्कार कर दिया कि महतर के पानी पिलाने से उसका लोटा अशुद्ध हो जायगा। इस पर मेहतर ने व्यंग से हँस कर कहा—'महाराज हमको पानी पिलाने में तो आपका लोटा अशुद्ध होता है पर तुम लोग जो दाँत से काट कर कारतूस लगाते हो तो तुम्हारा धर्म कहाँ रहा? उसमें तो सूअर और गाय की चर्बी लगती है।

मेहतर तो यह बात कह कर वहाँ से चला गया। पर वह ब्राह्मण सिपाही यह सुन कर जड़ हो गया। जब उसने सिपाहियों से यह बात कही तो सिपाहियों में बड़ी बेचनी फैल गई। आग की तरह यह खबर प्रशिक्षण केन्द्र में फैल गई। अग्रज अफसरों तक के कानों में भी यह बात गई। इस घटना के दूसरे दिन दमदम अम्युनेटरी डिपो के संचालक मेजर ओन्टीन ने सारे भारतीय सिपाहियों की परेड कराई। जिसमें सिपाहियों ने नई राईफल में दाँत से काट

कर कारतूस लगाने तथा उन अशुद्ध कारतूसों को हाथ से छूने से इन्कार कर दिया। मेजर कोन्टीन ने इस घटना की रिपोर्ट अपने अफ़सर को भेज दी। यह घटना २२ जनवरी के दिन घटी। इन कारखानों में जो ये कारतूस बन रहे थे—उनके लिए ग्रीस और चर्बी की सप्लाई का ठेका एक बंगाली ब्राह्मण को दिया गया था। यह ब्राह्मण ठेकेदार भेड़-बकरी की मँहगी चर्बी न लेकर सूअर और गायों की सस्ती चर्बी सप्लाई करता रहा था और उसी का प्रयोग इन कारतूसों में होता रहा था।

बाद में कलकत्ते के मेजर फोर्ड ने इस बात की जाँच के लिए एक कमीशन बठाया तो उसे सलाह दी गई कि एक हिन्दू और एक मुसलमान को भी इस कमीशन में नियुक्त किया जाना चाहिए। किन्तु शासनसत्ता के अधिकारी इससे सहमत नहीं हुए। फलतः इन कारतूसों का वास्तविक रहस्य सिपाहियों से छिपा रहा और असंतोष के साथ उनके सन्देह बढ़ते ही रहे। जिसे देखकर कर्नल टेकर ने सैनिक बोर्ड को चेतावनी दी कि यदि भारतीयों को ये कारतूस दिए गए तो उसके बुरे परिणाम निकलेंगे। इन कारतूसों में चर्बी की तीव्र दुर्गन्ध आती थी। और ये ही कारतूस दिल्ली और उत्तर भारत के दूर प्रदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेज दिए गए।

जनरल हियरसे ने, जो बैरकपुर में कमाण्डिंग आफीसर था—यह सुझाव दिया था कि सिपाहियों को कारतूसों पर अपनी इच्छानुसार ग्रीस लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए। परन्तु २८ जनवरी तक इस सुझाव पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। मफ्टीनण्ट के रिपोर्ट देने और कलकत्ते से सरकार का उत्तर आने में ६ दिन बीत गए। इस बीच सिपाही अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे और वे आवेश में भरकर यह चर्चा करने लगे कि सब सिपाहियों को भ्रष्ट करने

और उन्हें ईसाई बनाने का यह सरकार का षडयन्त्र है । परन्तु इसी बीच एडजुटेम्ट जनरल को यह सरकारी आदेश दे दिया गया कि ग्रीस लगा कर कोई कारतूस मेरठ से न भेजा जाय । साथ ही अम्बाला और स्यालकोट के सिपाहियों को सूचित कर दिया जाय कि व अपनी मनपसन्द का ग्रीस मोम और तेल का बना कर प्रयोग में ला सकते हैं । यह भी फैसला किया गया कि प्रधान सेनापति एसी एक सामान्य घोषणा कर दें । परन्तु एडजुटेम्ट जनरल के विरोध के कारण ये आदेश वापस ले लिए गए । यह स्पष्ट था कि हिन्दुओं के लिए गोमांस निषिद्ध था और मुसलमानों के लिए सूअर । और अफसर इस बात का खण्डन नहीं कर रहे थे—कि उक्त कारतूसों में सूअर और गाय की चर्बी नहीं लगी है । इसी प्रकार मार्च का महीना आ गया और मार्च में जनरल हियरसें को सूचित किया गया कि वह दमदम में चाँदमारी के समय इन कारतूसा का प्रयोग बन्द कर दें । परन्तु अब काफी देर हो चुकी थी और आज्ञाएँ अस्पष्ट थीं । विवाद का मूल कारण पूरी तौर पर नहीं हटाया गया था सरकार ने केवल यही आदेश दिए थे—कि डिपो में सिपाही चाहें तो मोम और तेल के ग्रीस का प्रयोग कर सकते ह परन्तु इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया गया था कि युद्ध क्षेत्र में उन्हें व कारतूस नहीं दिए जाएँगे । इसी समय सेना में एक और अफवाह फैल गई—कि सिपाहिया को जो आटा दिया जाता है उसमें हड्डियों का चूरा है तथा कुएँ के पानी को अपवित्र कर दिया गया है ।

इस सब कारणों से सेना में अनुशासन का ह्रास होता जा रहा था । और अफसरों को इसकी चिन्ता हो रही थी । जनरल हियरसें एक समझदार और साहसी अफसर था । उसने अपनी जवानी में पंजाब के विद्रोह को दबाया था । वह सिपाहियों की भाषा बोलता

था और उनसे सहानुभूति रखता था। परन्तु कर्नल ह्वीसर जनरल हियर्स से बिल्कुल ही भिन्न प्रकृति का अफसर था। उस बैरकपुर आए थोड़े ही दिन हुए थे। वह पिछले बीस वर्षों से सैनिकों में ईसाई धर्म का प्रचार करता रहा था। वह कहा करता था—"मैं सरकार को सरकार की चीजें और ईश्वर को ईश्वर की चीजें देता हूं। परन्तु देता हूँ। परन्तु इस प्रकार के पादरी अफसर बैरकपुर में तथा अन्यत्र छावनियों में और भी थे। इनके धर्माग्रह के कारण सिपाही जनरल हियर्स की उदार बातों को थोथी और बनावटी ही मानते थे। यद्यपि ह्वीसर ३४ वीं पल्टन का अफसर था—पर उसके धर्माग्रह के कारण सभी सेनाओं में असन्तोष चरम सीमा को पहुँच गया। बैरकपुर और उसके आस-पास तथा रानीगंज में आग लगाने की छुट-पुट घटनाएँ होने लगीं। असन्तोष का यह श्रीगणेश था। इसके बाद ही कुछ अधिक गम्भीर दुर्घटनाएँ मुर्शिदाबाद के निकट बहरामपुर में घटित हुईं, जो अब नाममात्र को नवाबों की राजधानी थी।

बहरामपुर में कर्नल मिचल की कमान में १९ वीं देशी पैदल सेना तैनात थी। मिचल एक तेज मिजाज और अदूरदर्शी अफसर था। कारतूसों की चर्चा बहरामपुर में पहले ही पहुंच चुकी थी। और एक ब्राह्मण हवलदार इस सम्बन्ध में बहुत पूछताछ करता रहता था। इसी समय ३४ वीं देशी पैदल सेना की दो टुकड़ियां बैरकपुर से बहरामपुर भेजी गईं। इस रेजीमेण्ट के सिपाहियों से कारतूसों की बात और भी पुष्ट हो गई। अतः परेड के समय १९ वीं रजीमेण्ट ने कारतूस की पेटी पहनने से इन्कार कर दिया। कर्नल मिचल ने इस समय सैनिकों की भावना की परवाह नहीं की। वह क्रुद्ध हो कर गालियां बकने लगा और सेना को सख्त सजा देने की उसने धमकी

दी। और सब भारतीय अफसरों को बुला कर उसने कहा कि यदि कल स सिपाहियों म कारतूस लेने से इन्कार किया, तो उन्हें कठोरतम दण्ड दिया जाएगा और सब को चीन या बर्मा भेज दिया जाएगा। वहां व सब मार डाले जाएंगे।

परन्तु दूसरे दिन भोर होने पर कवायद स प्रथम ही तोड़ फोड़ प्रारम्भ हो गई। सिपाहियों ने शस्त्रशाला को तोड़ डाला और अपने हथियारों पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया। और अपनी-अपनी बन्दूकें भर ली। कर्नल मिचल ने शक्ति स उनका मुकाबला करने का इरादा किया। यद्यपि उसके पास यूरोपियन सेना नहीं थी पर वह भारतीय घुड़सवार और तोपखाना लेकर विद्रोही सेना के सामने पहुंचा। स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई थी। परन्तु भारतीय अफसरों के समझान स उसने घुड़सवार रिसाला और तोपखाना वापस भेज दिया। और इस प्रकार एक भयानक दुर्घटना होते-होते बच गई।

परन्तु अनुशासन के नाम पर सेना को दण्ड देना अनिवार्य था। एडजोटैन्ट जनरल कबीन मग ने राय दी थी कि सेना को चीन या ईरान तुरत भेज दिया जाय। परन्तु गवर्नर-जनरल न फैसला किया कि सारी रजीमैण्ट को अविलम्ब भंग कर दिया जाय। इस अवसर पर भय था कि सैनिक राजी न हथियार नहीं रखेंगे। परन्तु यह भी भय था कि भारतीय घुड़सवार और तोपखाने वाले सम्भव अपने साथियों पर गोली चलाने को राजी न हों। ऐसी दशा में १९ वीं रेजीमेण्ट यदि प्रतिरोध करती है, तो गाड़ी के उस पार स रंगून स ८४ वीं अंग्रेजी रजीमेण्ट को बुलाया जाना अनिवार्य होगा। अत यह काम भी तुरन्त अमल में लाया गया और रंगून स ८४ वीं अंग्रेजी रेजीमेण्ट को लाने के लिए जहाज रवाना कर दिया गया।

इस समाचार से सिपाहियों के मन में भय और क्षोभ की लहर दौड़ गई । शीघ्र ही ८४वीं अंग्रेजी रेजीमेण्ट आ गई और उसे चिनसुरा में रखा गया और मिचल को हुक्म हुआ कि वह १९वीं रजीमेण्ट को बैरकपुर ले जाय ।

१९वीं रेजीमेण्ट ज्योंही बैरकपुर पहुँची, तो चारों ओर सनसनी फैल गई । सब यही चर्चा करने लगे कि अब यह रेजीमेण्ट भंग कर दी जाएगी । सिपाही इससे और भड़क गए और हथियार रख देने की अपेक्षा उनका उपयोग करने को तैयार हो गए ।

परन्तु ठीक समय पर सिपाहियों ने धैर्य का परिचय दिया । यथावत् परेड पर बुला कर सब हथियार छीन लिए गए । चूँकि सिपाहियों ने प्रकट में कोई विरोध प्रदर्शन नहीं किया—उनके साथ यह रियायत की गई कि उनके केवल हथियार छीन लिए गए किन्तु उन्हें अपनी वर्दी पहने रहने का अधिकार दे दिया गया । उन्हें वेतन और पेंशन के हक से तो वंचित कर दिया गया परन्तु घर तक जाने का खर्चा दे दिया गया । और ऐसा प्रतीत हुआ कि यह जोखिम भरा काम आसानी से पूरा हो गया । परन्तु यह वास्तव में क्रांति का श्रीगणेश था ।

— ० —

३०

१९वीं इन्फैन्ट्री के भंग होने पर यद्यपि प्रत्यक्ष में कोई दुर्घटना नहीं हुई परन्तु भारतीयों और अंग्रेजों को यह भान हो गया कि अब कुछ अनहोनी घटना होने वाली है । वातावरण बहुत शंकित हो गया था । अंग्रेज अफसरों और देशी अफसरों में अब वह पहले जैसा

विश्वास और एकता का भाव न था। सभी की नज़रें बदली हुई थीं। अविश्वास, भय और आशंका की घटाएँ चारों ओर छाई हुई थीं।

अभी १९ वीं इन्फैन्ट्री का मामला ठण्डा भी नहीं हुआ था कि दूसरी इन्फैन्ट्री रिजीमेंट के दो सिपाहियों को राजद्रोह के अपराध में १४-१४ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। सिपाही इस उत्तेजना का अभी दमन नहीं कर पाए थे कि जमादार सालिग रामसिंह का कोर्टमार्शल करके उसे बर्खास्त कर दिया गया। उस पर आरोप था कि उसने कारतूसों के सम्बन्ध में उत्तेजक अफवाहें सेना में फैलाई हैं।

सब मिला कर अंग्रेज अफसर केवल अनुशासन पर ही ध्यान दिए हुए थे। वे सिपाहियों की भावना का जरा भी विचार नहीं करते थे। न वे आने वाली गम्भीर स्थिति का भी ख्याल करते थे। देसी अफसरों तक से अंग्रेज अफसर बुरा व्यवहार करते थे। सेना में यद्यपि अंग्रेज अल्पसंख्यक थे—और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संख्या बहुत अधिक थी, पर उनके बीच कोई भाईचारे की भावना नहीं थी। कम्पनी के प्रारम्भिक दिनों में भाईचारे की जो भावना थी—अब उसका कहीं नामोनिशान भी न था। उन दिनों तो अंग्रेज अफसर भारतीयों से दोस्ती का व्यवहार करते थे। गर्मियों में उनके ना— — घर भारतीय कर देते थे। परन्तु अब तो मिसन पर प्रत्येक अंग्रेज अफसर ब्लडीफूल, सूअर, कुत्ता आदि कह कर बात करते थे। सार्जेण्ट अफसर गाली-गुप्ता तो देते ही थे, मार-पीट भी कर बैठते थे। इस समय सिपाहियों की प्रत्येक कम्पनी के साथ एक यूरोपियन सार्जेण्ट रहता था, जिसका व्यवहार सदैव ही सिपाहियों के साथ जंगली होता था। एडजुटेण्ट आफीसर भी सदैव सार्जेण्ट का पक्ष लेता था। बात

बाद में उन्हें काला आदमी कहा जाता था। प्रत्येक अंग्रेज प्रत्येक भारतीय से हीन-पशु की भाँति व्यवहार करने ही में अपनी जातीय श्रेष्ठता समझता था। आफीसर अपने बँगले पर मिलने जाने वाले प्रत्येक भारतीय सिपाही से क्रुद्ध हो कर बात करता था। बहुधा कमीशन प्राप्त भारतीय अफसरों को भी अपने से कम उम्र और अनुभवहीन अंग्रेज अफसरों के इशारे पर नाचना और उनकी गालियाँ सुननी पड़ती थीं। इन सब बातों ने भारतीय सिपाहियों में आत्मसम्मान और ईर्षा का भाव जगा दिया था।

भारत की प्राचीन परम्परा यह थी—कि प्रायः क्षत्रिय ही सैनिक होते तथा युद्ध करते थे। इस परम्परा का भंग दक्षिण में हुआ जब मराठा जाति का नवीन संगठन हुआ। और मराठा की हीन जातियाँ ऊँची उठ कर सतारा, ग्वालियर, इंदौर, कोल्हापुर और बड़ौदा में राज्यपदासीन हुईं। मुसलमान सैनिक हिन्दू विरोधी सैनिक थे। परन्तु अंग्रेजों ने अपने झण्डे के नीचे हिन्दुओं और मुसलमानों ही को नहीं—हिन्दुओं की दूसरी ऊँची जातियों को भी सैनिक श्रेणी में ला खड़ा किया। एक तरह उन्होंने जहाँ नीच जाति के गोप कैवर्त और शूद्रों को राजाबहादुर और महाराजा बना दिया वहाँ दूसरी ओर कुलीन ब्राह्मणों को सिपाही बना दिया। इन ब्राह्मण सिपाहियों में अवध के कुलीन ब्राह्मण ही अधिक थे। उनमें कुलाभिमान था। पर अंग्रेज तो सभी हिन्दू-मुसलमानों को नीच समझते थे। अतः अंग्रेजों की हीन भावना का सबसे भयानक प्रभाव इन ब्राह्मण सिपाहियों पर ही पड़ा। मंगल पाण्डे एक ऐसा ही तरुण ब्राह्मण था। वह स्वभावतः ही उग्र था। फिर गोपाल पाण्डे की उत्तेजना उसकी नस नस में भर गई थी। वह अंग्रेजों को विष दृष्टि से देखता था और इधर जो नई-नई घटनाएँ हो रही थीं, उन्हें देखकर उसका भून खौल

हा था। उसे ज्ञात था कि शीघ्र ही एक बड़ा विस्फोट होने वाला है। रन्तु वह धैर्यरहित हो गया और अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठा।

२६ माघ रविवार का दिन था। बहुत से अफसर और अंग्रेज निक गिरजे में गए हुए थे। यद्यपि सब कुछ साधारण-सा ही लग रहा । परन्तु किसी के मन में उत्साह और आनन्द न था। दोपहर का समय ा। अतः अफसर और उनकी मेमें गिरजे से लौट रही थीं। सभी ी जबान पर देशी सैनिकों के आचरण की बात थी। ३४वीं इन्फन्ट्री रेड के लिए सफ बांध कर खड़ी थी। अकस्मात् ही मंगल राइफल ठा कर पंक्ति से बाहर आया। उसने अपनी तलवार भी म्यान से काल ली—और उसे हवा में घुमाता हुआ चिल्ला-चिल्ला कर कहने गा— 'बहादुरो किस सोच में पड़े हो। उठो उठो आगे आओ। म्हें धर्म की सौगन्ध है। हिन्दू को गंगा और मुसलमान को मक्का की ़सम है। आगे बढ़ो जवानो ! इन अंग्रेज दुश्मनों के खून से अपने लेजे को आग ठंडी करो। धर्म-युद्ध का समय आ चुका है।

सारी पल्टन में हलचल मच गई। मंगल लपकता हुआ बिगुलर ी ओर भागा—और उससे तेज आवाज में कहा—

'खड़ा क्या है? बिगुल बजाओ और सारी फौज को इकट्ठा रो।

सैनिक बिगुलर ने समझा कि मंगल भंग के नशे में बौखला रहा । वह उसकी बात सुन कर हँसने लगा।

उसी कम्पनी के सार्जेन्ट मेजर ह्यूसन ने चिल्ला कर सिपाहियों ो आज्ञा दी कि— 'इसी समय इस बदजात को गिरफ्तार करो।'

परन्तु कोई सिपाही अपने स्थान से नहीं हिला। इस पर सार्जेन्ट जर ह्यूसन स्वयं आगे बढ़ा। मंगल ने निशाना साधा और राइफल ाग दी। गोली ने सार्जेन्ट की खोपड़ी चकनाचूर कर दी। वह ूमि पर गिर पड़ा और तुरन्त मर गया।

छावनी में हलचल मच गई। समाचार पाते ही एडजुटेण्ट लेफ्टिनेण्ट बफ और सार्जेण्ट हडसन घोड़ों पर सवार होकर घटना स्थल पर पहुँचे। मंगल ने एक तोप की आड़ लेकर गोली दाग दी। गोली बफ के घोड़े को लगी—घोड़ा अपने सवार को लेकर गिर गया। परन्तु बफ ने तुरन्त उठकर पिस्तौल मंगल पर दाग दी। निशाना चूक गया। मंगल की बन्दूक अब खाली थी वह तलवार लेकर बफ पर टूट पड़ा। इसी समय हडसन ने आगे बढ़ उसके सिर पर बन्दूक की नाल से वार किया। पर मंगल बड़ी फुर्ती से बचा और तलवार लेकर दोनों से भिड़ गया। दोनों अफसर मिलकर भी इस वफर पुए घर का कुछ न बिगाड़ सके। वे घायल हो गए। इसी समय कर्नल व्हीलर ने चिल्ला कर कहा—'पकड़ो-पकड़ो गिरफ्तार करो।' इस पर शेख पलटू ने आगे बढ़कर मंगल का हाथ पकड़ लिया। इस समय क्वाटर की ड्यूटी पर जो सैनिक थे वे निकट ही खड़े तमाशा देख रहे थे। उन्होंने पलटू से चिल्लाकर कहा—'खबरदार पाण्डे के हाथ न लगाना। वरना जान न बचेगी।" पलटू घबरा गया और उसने मंगल को छोड़ दिया। दोनों अंग्रेज अफसर वहाँ से भाग गए। मंगल ने फिर अपनी राइफल में गोलियाँ भर ली।

इसी बीच जनरल हियरसे को इस घटना की सूचना मिली। वह तुरन्त अपने दोनों लड़कों और कुछ गोरे सैनिकों की टुकड़ी लेकर घटना-स्थल पर पहुँचा। जनरल को आते देख मंगल ने पुकार लगाई—"जवानो आगे आओ धर्म युद्ध करो। ये हमारे शत्रु अंग्रेज हमारे धर्म के दुश्मन आ रहे हैं। इन्हें खत्म कर दो।" परन्तु पलटन के लोग कुछ दूर हट गए कुछ चुपचाप पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रहे। मंगल की पुकार पर कोई आगे न बढ़ा। तब उसने अपना अन्त समय निकट जान कर जोर से चिल्ला कर कहा—"मैं ब्राह्मण हूँ, किसी

पाण्डाम के हाथ मेरे गले में फांसी का फंदा नहीं डाल सकते।" इतना कह कर उसने राइफल अपनी छाती से लगा कर दाग दी और उसका मोह-सुहाग शरीर भूमि में पड़कर छटपटाने लगा।

— ० —

। ११

जान फिलिप कानपुर की देसी पल्टन में पादरी लफ्टीनेण्ट के नाम से प्रसिद्ध था। वह बहुधा हिन्दू-मुसलमान सिपाहियों को ईसाई बनने का उपदेश देता और अनेक धर्म की निन्दा किया करता था। उसकी मातहती में एक मुसलमान सिपाही मुहम्मद याकूब था। याकूब अपने रोजा-नमाज का पक्का और सच्चा सिपाही था। एक दिन लफ्टीनेण्ट ने उसे अपने आफिस में बुला कर कहा— 'तुम्हारा यह ढीला पायजामा तो एकदम वाहियात है। इसे न पहना करो जाओ।

बहुत अच्छा हुजूर इतना कहकर वह सलाम करके जाने लगा। लफ्टीनेण्ट ने पुकारा— 'ठहरो।"

याकूब ने फिर सल्यूट किया— 'हुक्म ?"

तुम्हारी यह दाढ़ी भी बहुदी है।"

'हुजूर हमारे कुरानपाक में दाढ़ी रखना मजहबी उसूलों में माना गया है।"

कुरान वाहियात किताब है तुमने कभी इन्जील पढ़ी है ?"

नहीं हुजूर, मैं हमेशा कुरान शरीफ पढ़ा करता हूँ।

लेकिन इन्जील भी पढ़ा करो।"

"बहुत अच्छा हुजूर,' वह फिर जाने लगा तो लेफ्टीनेण्ट ने उसे रोक कर कहा— 'ठहरो।

सिपाही ने फिर सैल्यूट किया और खड़ा हो गया। लफ्टीनेण्ट ने कहा—

'क्या तुम यह समझते हो कि कुरान पढ़ने से तुम्हारे गुनाह माफ हो सकते हैं ?'

'हुजूर, रसूल अल्लाह ने कहा है कि तौबा करने से गुनाह माफ हो सकते हैं।

"लेकिन तुम्हारा रसूले अल्लाह तो इस वक्त दोजख में है तुम यदि उसी पर ईमान लाए रहोगे तो तुम भी दोजख में जाओगे।

बहुत अच्छा हुजूर, वह सैल्यूट कर चल पड़ा तो लफ्टीनेण्ट ने तिबारा रोक कर कहा—'ठहरो।'

वह फिर रुककर और सल्यूट करके एटेंशन खड़ा हो गया। लेफ्टीनेण्ट ने कहा— 'ठहरो।'

यूसुफ फिर एटेंशन में खड़ा हो गया। सामने से एक सिपाही गोपालसिंह आ रहा था। लफ्टीनेण्ट ने कहा— 'उसे बुलाओ।" यूसुफ गोपालसिंह को बुला लाया। लफ्टीनेण्ट ने उससे कहा 'यह क्या हिमाकत है कि नंग बदन घूम रहे हो और तुम्हारे सिर पर यह इतना बड़ा जूड़ा क्यों है।"

'हुजूर आज एकादशी है। मैं गंगा नहा कर आ रहा हूँ और पूजा करके कपड़ा पहन सकता हूँ।'

'बेहूदा और जंगली तरीके हैं तुम्हारे। यह माथे पर तुमने क्या लगाया है।"

"यह तिलक है हुजूर।"

'इसे पोंछ दो और आइन्दा बैरक में तिलक नहीं लगा सकता।"

'बहुत अच्छा हुजूर' वह चलने लगा। लपटीनेन्ट ने कहा—'ठहरो।'

गोपालसिंह रुक गया। उसने भी सैल्यूट किया। लेफ्टीनेण्ट ने कहा देखो—तुम दोनों हिन्दू-मुसलमान गुमराह हो। तुमको लाजिम है सच्चे ईश्वर और उसके बेटे ईसूमसीह की शरण आओ और वाहियात और खराब राम और मुहम्मद का रास्ता छोड़ दो।"

'बहुत अच्छा हुजूर।

तुम यदि ईसाई बन जाओगे तो हम तुम्हें तरक्की देंगे। तुम्हारा ओहदा बढ़ेगा। सिपाही को हम हवलदार और हवलदार को सूबेदार-मेजर बना देंगे।

बहुत अच्छा हुजूर।

दोनों सिपाहियों ने सल्यूट किया और चल दिए।

— • —

१२

आम तौर पर सरकारी तथा व्यक्तिगत पत्र व्यवहार में अंग्रेजों ने भारतीय हिन्दू और मुसलमानों का एक संयुक्त नाम रखा था—'हींदन'। यह नाम घृणा और तुच्छता का द्योतक था। इसका अर्थ था—जंगली मिथ्याविश्वासी। और हिन्दू-मुसलमान दोनों को असभ्य बताने के लिए अंग्रेज सारे भारतवर्ष के निवासियों को ईसाई बनाना चाहते थे।

जिस समय अंग्रेज इस प्रकार भारत के पैरों में दासता की बेड़ियाँ डाल रहे थे उस समय व सारे संसार में धर्मभ्रमण का आरम्भ कर चुके थे। अफ्रीका और अमरिका के मूल निवासियों को ईसाई

बना लेने से उनका साहस बढ़ गया था और अब व भारत के इन हींदनों पर ईसूमसीह के क्रास की छाया डालना चाहते थे। व उन दिनों यह सपना देख रहे थे—कि एक बार पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से चमत्कृत होकर हिन्दुस्तान के ये हीदन अपने धर्म पर लज्जित होंगे, उसे त्याग देंगे और वद कुरान की अपेक्षा इञ्जील को पवित्र मानेंगे। उनके मन्दिर-मस्जिद एक दिन गिरजा बन जाएँगे। इसी भावना से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध का प्रत्येक अंग्रेज अपन लेखों भाषणों और भावों में यही प्रकट करता था कि ईसाई-धम का झंडा भारत के एक छोर से दूसर छोर तक लहराने के लिए ही भारत का विशाल साम्राज्य—खुदावन्द करीम ने हमारे हाथों में दिया है। इसलिए समूचे भारत को ईसाई बनाने क महान् कार्य में जीम ल ाकर शक्ति भर चेष्टा करनी चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर सन् १८३६ में मेकाले ने यह गर्वोक्ति की थी कि तीस वर्षों में भारत में एक भी मूर्तिपूजक न बचेगा।

भारत में ईसाई धम को फैलाने का इतना तीव्र आग्रह ईस्ट इंडिया कम्पनी का इसलिए था—कि अंग्रज समझत थ कि यदि एक बार हिन्दुस्तान से धम का लाप हो जाय तो फिर यहाँ की राष्ट्रीय भावना अपनी मौत मर जाएगी पनपने ही न पाएगी और आत्मतत्व और आत्माभिमान रहित जाति पर शासन करना आसान होगा। असल में ईसाइयत क प्रचार का दृष्टिकोण भी धार्मिक न था, शुद्ध राजनीतिक था। इसलिए अंग्रजों ने इस काम में पाचुगीजों तथा औरंगजब की भाँति तलवार का उपयोग नहीं किया—कूटिल राजनीति बरती। उस युग के साम्राज्य की राजनीति को व भली-भाँति जाँच कर चुके थ और अत्यन्त चतुराई स धीरे-धीरे—लगातार हिन्दुस्तान को ईसाईस्तान बनाने का कारोबार प्रच्छन्न रूप में उन्होंने जारी रखा था

इसी दृष्टिकोण को लेकर तत्कालीन रेवरेण्ड केनेडी ने कहा था—कि जब तक हमारा साम्राज्य भारत में है हमें किसी प्रकार की अड़चनों की परवाह न करके भारत में हिमालय से लंका तक ईसाई-धर्म का विस्तार करना होगा। और जब तक समूचा भारत ईसाई न बनेगा और हिन्दू-मुसलमानों के धर्म की निन्दा न करेगा, तब तक हमें अपना काम जोरों से करना चाहिए। हमें जी जान से बल और अधिकार के प्रयोग से ऐसे उपाय करना चाहिए कि भारत के पूर्व में ईसाइयों का एक सुदृढ़ गढ़ बन जाय।

इसी बात को दृष्टिकोण में रख कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राजनीति चली। उस बात को छोड़िए कि कितने ईसाई मिशनरियों ने भाँति भाँति के प्रलोभन धमकियाँ और आश्वासन देकर लोगों को ईसाई बनाया। इनाम कमीशन और लार्ड डलहौज़ी की कुटिल नीति के फलस्वरूप जब राजा नवाब सरदार, जागीरदार, ज़मींदार नष्ट हो गए तो सबका मन्दिर पाठशाला मकतबों को जो सहायता मिलती थी बन्द हो गई तथा ऐसी संस्थाओं को जो गाँव ज़मीन और माफ़ियाँ इनाम मिलते थे वे भी ज़ब्त हो गए।

इसके बाद जब सती प्रथा को बन्द करने और विधवा विवाह जारी करने के क़ानून बने तो लोग चौकन्ने हो गए और यह सोचने लगे—कि ये विदेशी हमारी सामाजिक और धार्मिक रीतियों में क्या दखल देना चाहते हैं। जब बंगाल में सती प्रथा बन्द होने का आन्दोलन चल रहा था तभी सरकार ने यह भी घोषणा की थी—कि हिन्दुओं को धार्मिक रिवाज पालन करने का हक नहीं है। और जब विधवा विवाह क़ानून कौंसिल में पास हो रहा था—तब लार्ड कैनिंग ने राय दी थी—कि बहु-पत्नीत्व निवारण का विधेयक भी लेजिस्लेटिव कौंसिल में लाया जाय और इसके तुरन्त बाद ही बहु

लाया भी गया । और कोशिश की गई कि उस जल्द से जल्द कानून का रूप दे दिया जाय । इस कार्य में लार्ड कैनिंग ने बड़ी तत्परता दिखाई थी ।

यद्यपि ये सुधार आवश्यक थे और जन-जागरण के बाद जन-नेताओं द्वारा होते । उस काल में भी राजा राममोहन राय और उनके साथी इन सुधारों में सहायक थे । पर जनता में आम तौर पर न तब जागरण था न राजा राममोहन राय जैसे सुधारकों को बहुमत प्राप्त था । जनता तो अन्धविश्वासों में जकड़ी पड़ी थी और शताब्दियों की रूढ़ियों ने उसकी विचारशक्ति को भुला दिया था । अब उनके जागरण से प्रथम ही विदेशियों ने जो इस प्रकार की चेष्टाएँ की तो अपढ़ और साधारण कोटि की बहुसंख्यक जनता में यह भावना फैल गई कि यह स्पष्ट ही हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक रीति रिवाजों पर आक्रमण हो रहा है । और यह विदेशी सरकार हमारे धर्म विश्वासों और रीति-रिवाजों में दखल देती है । स्पष्ट था कि इन धार्मिक रीति रिवाजों की अच्छाई-बुराई पर जनता विचार नहीं करती थी परन्तु इतना वह समझती थी कि धर्म-शास्त्रों में बताए गए सामाजिक रीति-रिवाजों में किसी तरह हेर-फेर करने का अधिकार केवल समाज के विद्वान् धर्म-शास्त्रियों ही को है विदेशियों को नहीं । इसके अतिरिक्त ऐसे मामलों में जल्दी और जबरदस्ती करना भी किसी तरह उपयुक्त न था । जहाँ-तहाँ लोग कहने लगे—लो साहब सती होना बन्द हुआ आज विधवा विवाह का चलन हो गया कल देवी-देवताओं की पूजा भी बन्द होगी । बस हिन्दू धर्म का बेड़ा गर्क ।

आम लोगों की इस अशान्त भावना को ईसाई मिशनरियों ने और बढ़ा दिया । वे गुल्लमगुल्ला डींग हाँकते थे—कि बहुधा

भारत ईसाई होने वाला है। लोग कहते थे—यह तो औरंगजेबी जुल्म है। क्या आज कोई शिवाजी जैसा वीर और गुरु गोबिन्द सिंह जैसा महापुरुष नहीं जन्म लेगा जो इन विधर्मी, अत्याचारी विदेशियों का देश से निकाल बाहर करे ?

अभी ये बातें जनता में चल ही रही थीं कि—रेलगाड़ी चलने लगी और तार लग गए। रेलगाड़ी में छूत-अछूत सभी एक साथ बैठने लगे। इसकी रोक न होने से हिन्दू-जाति-निष्ठा को भारी चोट पहुँची। रेल की पटरी और तारों के जाल को देख कर लोग कहते थे कि अब तो ईश्वर ही कृपा करें। धरती माता बाँधी जा रही है। कुछ लोग कहते—अजी सब हिन्दू-मुसलमान लोहे की पटरी के द्वारा धुएँ की गाड़ी में बैठा कर म्लेच्छ भेज दिए जाएँगे। जहाँ साबू उन्हें खा जाएँगे। हिन्दुस्तान में अब अंग्रेज रहेंगे।

इस समय मिशनरियों के स्कूल-कालेज बन गए थे और उनमें धड़ल्ले से हिन्दू-मुसलमानों को बाइबिल पढ़ाई जाती थी। तथा लार्ड कैनिंग की सरकार ने उन्हें बड़ी-बड़ी रकमें सहायतार्थ दी थीं, जब कि देशी पाठशालाएँ और मकतब तोड़ दिए गए थे। ईसाई अपने व्याख्यानों में कहते थे—कि जो हिन्दू-मुसलमान ईसाई हो जायगा उसकी जमीन-जायदाद धन-माल पर उसी का पूरा कब्जा रहेगा। ऐसा कानून बन चुका है। यह सत्य भी था कि उन दिनों ईसाई मिशनरियों को भारी-मोटी तनख्वाहें भारतीय खजाने से दी जाती थीं। उन दिनों साधारण गोरे सरकारी कर्मचारी से लेकर बड़े से बड़े अफसर तक की यह इच्छा रहती थी कि जल्द से जल्द उनके मातहत सब काले आदमी ईसाई बन जाएँ। उस समय लार्ड कैनिंग और उनके कौंसिलर ही सरकार थे। इन सब कारणों से लोगों में एक अशान्ति थी, अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना घर

करली जाती थी और अब इस विचार से कि यदि कभी भारतीय प्रजा विद्रोह करे, तो उसकी आंच सैनिकों तक न पहुँचने पाए, देशी सैनिकों में भी ईसाई-धर्म का प्रचार जोरों से होने लगा था।

लड़ाई जब नहीं होती थी तो सिपाही लोग फुर्सत में रहते थे, और तब अंग्रेज कर्नल कप्तान उन्हें ईसाई-धर्म का उपदेश देते थे। ये उपदेश सीधी-सादी नर्म भाषा में नहीं होते थे। उनमें धमकी, कटु व्यंग और हिन्दू देवी-देवता तथा मुसलमानों के पैगम्बर को गाली-गुफ्ता तक होती थी। बहुधा मूर्तियाँ भ्रष्ट कर दी जाती थीं। तिलक-छाप और चोटी हिन्दुओं की तथा दाढ़ी की मुसलमानों की मुमानियत की जाती थी। सिपाहियों को सब कुछ सुनना और सहना अनिवार्य था। पर ये पत्थेबर और इन बातों के कारण अंग्रेजों से घृणा करते तथा उनके प्रति विद्रोही बनते जाते थे। यदि कोई सिपाही इन गोरे अफसरों के इन व्यंगों का जवाब देना चाहता था, तो उसकी भी रोटी बन्द कर दी जाती थी। इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान सभी सिपाही यह आम राय रखते थे कि अंग्रेजी फौज की बैरकों में रहना अपने धर्म ईमान को खोकर ही हो सकता है। कोई सिपाही ईसाई हो जाता तो उसे तुरत इसी कारण हवलदार-सूबेदार बना दिया जाता और योग्य व्यक्ति मुँह ताकते रह जाते।

उन दिनों प्राय ये सब गरीब-गँवार असहाय और अल्पदर्शी, बसुमम होते थे। उन्हें धर्मभ्रष्ट और पथभ्रष्ट करना आसान था। इसलिए एक बार अंग्रेजों की यह भावना दृढ़ हुई कि पहले इन सब सैनिकों को ही ईसाई बना लिया जाय। उन दिनों कुछ कमाण्डर और कर्नल खास तौर पर इसी अभिप्राय से भरती हुए थे और सिपाहियों को ईसाई बनाना अपना प्रधान कर्तव्य समझते थे। उन दिनों

देश में ऐसे बहुत-से मुल्ला और हिन्दू पण्डित थे, जो फिरंगियों का कत्ल करने का फतवा दिया करते थे।

ऐसा ही अशान्त वातावरण था जब डलहौजी ने सदियों से प्रचलित दत्तक पुत्र के अधिकारों को अमान्य करके उन्हें पिता की सम्पत्ति से विरत कर दिया। इससे सारे देश का वातावरण क्षुब्ध और क्रुद्ध हो उठा। यह सब हो रहा था कि नए कारतूसों ने जैसे धधकती क्रोधाग्नि पर घी डाल दिया।



३३

उन दिनों कलकत्ते के दक्षिण अंचल में जान बाजार में महारानी रासमणि दासी रहती थीं। रासमणि बड़ी धनी और धर्मात्मा महिला थीं। उनकी दानशीलता की बड़ी धूम थी। उनके श्वसुर वारेन हेस्टिंग्स के दाहिने हाथ थे। राजा नन्दकुमार को फाँसी दिलाने में उनका प्रमुख हाथ था। वारेन हेस्टिंग्स की कृपा से उन्होंने बहुत धन-सम्पत्ति एकत्र कर ली थी तथा उन्हें महाराजा का खिताब भी मिल गया था। उनकी मृत्यु पर उनके पुत्र महाराजा राजचन्द्र बसु ने कम्पनी सरकार की अथक सेवा करके सम्पत्ति एकत्र की थी। उनकी मृत्यु को भी अब चार साल बीत चुके थे। इस समय रानी रासमणि दासी ही पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी थीं। इस समय उनकी अवस्था चालीस बरस की थी और उनकी संतति में चार कन्याएँ थीं। तीन कन्याओं का विवाह हो चुका था, किन्तु तीसरी बेटी का प्रसव वेदना में देहान्त हो गया था। रानी ने सोचा कि अब उनके एकमात्र आधार दामाद मथुरानाथ कदाचित् उनसे

ाता छोड़ कर अपने घर चले जायें इसलिए उन्होंने अपनी कनिष्ठ कन्या जगदम्बा का विवाह उनके साथ कर दिया था ।

रानी जाति की केवट थीं । अंग्रेजों की कृपा से बहुत केवट, ग्वाले, बाग्दी आदि उन दिनों राजाबहादुर और महाराजा हो गए थे । परन्तु बंगाल में ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व और जातपात का अहंकार अभी भी बहुत था । रानी रासमणि की देवी का इष्ट था । उनके जमींदारी के कागजों पर उनकी जो मुहर लगाई जाती थी उसमें—कालीपद अभिलाषी श्रीमती रासमणि दासी अंकित रहता था । रानी की बड़ी अभिलाषा थी कि वह काशी जा कर श्री विश्वनाथ का दर्शन करें । इसके लिए उन्होंने बहुत भारी रकम रख छोड़ी थी । परन्तु उस समय बंगाल का कोई निष्ठावान ब्राह्मण उनके साथ जा कर उन्हें विश्वनाथ जी के दर्शन कराने को राजी नहीं हुआ । इससे हताश हो कर उन्होंने कलकत्ते ही में गंगा तट पर विश्वनाथ बाबा की प्रतिष्ठा कर के भोग-पूजा का बन्दोबस्त करने का इरादा किया। रानी ने गंगा के पश्चिम तट की वाराणसी तुल्य समझ मन्दिर के लिए जमीन की तलाश की । और उत्तरपाड़ा के गाँवों में स्थान ढुंढ़वाया । वे उचित से अधिक मूल्य भी देने को राजी हो गईं । परन्तु वहाँ के जमींदारों ने यह कह कर जमीन बेचने से इन्कार कर दिया कि हम लोग अपने इलाके में केवट के धन से बने घाट पर पैर नहीं रखेंगे । तब लाचार हो रानी को दूसरे किनारे दक्षिणेश्वर में ही जमीन लेनी पड़ी । जमीन पर भव्य मंदिर बनने लगा बागीचा भी लगने लगा । कई साल तक काम चला । अभी बहुत काम शेष था—कि रानी ने प्रथम जीवन की क्षणभंगुरता पर विचार कर के प्रथम देवता की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया परन्तु वे जाति की केवट थीं, इसलिए प्रतिष्ठा और पूजा के लिए कोई ब्राह्मण नहीं मिला । रानी

मन्दिर में देवता की प्रतिष्ठा करा सकती हैं—इसकी किसी भी पण्डित ने व्यवस्था नहीं दी। बड़ी दौड़-धूप और मिन्नत-चिरौरी करने से झामापुकुर की पाठशाला के पण्डित जी ने यह व्यवस्था दी कि रानी यदि प्रतिष्ठा से पहले ही देवालय और सम्पत्ति किसी ब्राह्मण को दान में दे दें, और फिर वह ब्राह्मण मन्दिर की प्रतिष्ठा करा के भोग राग की व्यवस्था करे तो शास्त्र की मर्यादा भी रह जायगी और मन्दिर में ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोगों को प्रसाद ग्रहण करने में कुछ दोष भी न लगेगा।

निरुपाय रानी ने अपने कुलगुरु को वह मन्दिर और सम्पत्ति दान कर दी और उनकी अनुमति से उनकी कर्मचारी की हैसियत से मन्दिर-निर्माण तथा प्रतिष्ठा का प्रबन्ध करने लगीं। परन्तु इतने पर भी बंगाल के पण्डितों का विरोध कम न हुआ। उन्होंने कहा—शास्त्र विरुद्धता की कठिनाई तो दूर हो गई परन्तु फिर भी कोई ब्राह्मण यहाँ न आएगा। निदान कोई ब्राह्मण शूद्र द्वारा प्रतिष्ठित देवी-देवता को हाथ जोड़ने तथा पूजा करने को राजी नहीं हुआ। रानी के गुरुवंश वालों का भी दूसरे ब्राह्मण एक प्रकार से शूद्र ही मानते थे। इसके अतिरिक्त उस वंश में कोई ऐसा विद्वान् ब्राह्मण न था जो प्रतिष्ठा और पूजा का कार्य सम्पन्न करा सके। रानी ने अधिक वेतन और बहुत-सा पारितोषिक देना स्वीकार कर के पुजारी और भण्डारी के पद के लिए ब्राह्मण की तलाश की। परन्तु कोई कुलीन ब्राह्मण राजी न हुआ। बड़ी कठिनाई से अपनी पदवृद्धि की आशा से रानी की कचहरी के कारकुन महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने बड़े भाई रामनाथ को राधागोविन्द की मूर्ति का पुजारी नियत किया। किन्तु काली की पूजा करने के लिए पुजारी नहीं मिला। परन्तु अब ब्राह्मणों की भर्ती का मार्ग खुल गया था। झामापुकुर की पाठ-

ाला के अध्यापक रामकुमार भट्टाचार्य महेशचन्द्र के परिचित थे । नमें परस्पर कुछ गाँव का रिश्ता भी था । भट्टाचार्य शास्त्र थे । ौर उन्होंने कभी-कभी चोरी-छिपे कलकत्ते के कायस्थों के यहाँ ुजारी का काम किया भी था । परन्तु भरोसा न था कि वह शूद्रा रानी े यहाँ भी आ कर काम स्वीकार कर लेंगे । फिर भी महेशचन्द्र े कहने से रानी ने बड़ी दीनता से रामकुमार के पास पत्र द्वारा प्रार्थना की—कि जगन्माता की प्रतिष्ठा का कार्य आप की ही दी हुई व्यवस्था े अनुसार हो रहा है, सारी तैयारी हो चुकी है । राधागोविन्द की ूजा के लिए पुजारी मिल चुका है, परन्तु काली की पूजा के लिए ब्राह्मण नहीं मिल रहा है । इसलिए आप इस कार्य में सहायता करें ।

महेशचन्द्र ने रानी का पत्र रामकुमार को देकर और समझा बुझा कर तथा लोभ-लालच से वश करके अन्त में उन्हें इस बात पर राजी कर लिया कि जब तक दूसरा उपयुक्त ब्राह्मण न मिले तब तक काली के पुजारी पद का भार वे ही ग्रहण करें और अन्तत वे राजी होकर दक्षिणेश्वर चले आए । रामकुमार भट्टाचार्य की असम्भावित कृपा से रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर बड़ी धूमधाम से जगदम्बा काली की प्रतिष्ठा की गई । बड़ा भारी दान भोज का आयोजन हुआ । कन्नौज, काशी, सिलहट उड़ीसा आदि दूर से पण्डित लोग उस उत्सव में निमन्त्रित हुए । उन सबको रेशमी धोती दुपट्टा और एक-एक मुहर विदाई में मिली । अनगिनत अतिथि अभ्यागत और दीनदुखी जनों को रानी ने मुक्तहस्त से दान दिया । मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा कराने में रानी ने ९ लाख रुपया खर्च किया और दो लाख २६ हजार में त्रैलोक्यनाथ ठाकुर से उनका शालबाड़ी जिले का इलाका खरीद कर राग भोग के लिए मन्दिर को दे दिया ।

मन्दिर की प्रतिष्ठा होने से प्रथम ही रानी विधि से कठोर तपस्या करने लग गई थीं । वे तीन बार स्नान करतीं हविष्य भोजन करतीं,

भूमि पर सोतीं और हर समय जप-पूजन करती रहती थीं। परन्तु कैसी अद्भुत बात थी कि इस धर्मभीरु परिश्रमवती रानी का शूद्रत्व तनिक भी कम न होता था। वे शूद्रा थीं अछूत थीं। उनके प्रतिष्ठित देवता भी ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य थे। इन दिनों बंगाल में छूत छात और जात-पाँत का ऐसा ही असाध्य रोग चल रहा था।



१४

दक्षिणेश्वर के बगीचे में उत्तर की ओर, गंगा किनारे एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है। इसका तना और प्रशाखाएँ कोई बीघे भर भूमि में फैली हुई है। बीच-बीच में जो बरोहें लटक कर जमीन में आ लगी है, वे उसके लिए थूनी का काम देती हैं। इसके दक्षिण में एक छोटी-सी फूस की कुटिया थी अब उसकी जगह पक्का ईंटों का घर बन गया है। उसी कुटिया के आगे एक ब्राह्मण चुपचाप कहीं से आकर बैठ गया था। तेजस्वी और गम्भीर था वह न किसी से कुछ बोलता था न किसी ओर देखता था। वह शान्त मुद्रा में चुपचाप बैठा मन्दिर की प्रतिष्ठा के समारोह की धूमधाम को देख रहा था। हजारों नर-नारियों की भीड़ उस समय मन्दिर में भरी थी। ब्रह्मभोज हो रहा था। भाँति-भाँति के पकवान ढेर के ढेर तैयार होते और भण्डार से बाहर आते जा रहे थे। बड़े-बड़े चोटी धारी ब्राह्मण भोजन करके पेट पर हाथ फेरते—और मुहर दक्षिणा में लेते जा रहे थे। परन्तु यह ब्राह्मण चुपचाप सबको देख रहा था। उसने यहाँ भोजन भी ग्रहण नहीं किया था।

एक ओर बारह बरस का बालक उस दिन बड़ी दौड़धूप कर रहा था। उसका निवास इसी कुटिया में था। वह बारंबार वहाँ आता और तेजी से चला जाता। उस बालक की आकृति और रूप रंग तो साधारण था—पर उसके व्यवहार में बड़ा आकर्षण था। जब-जब वह बालक उधर से गुजरता या कुटिया में आता-जाता तो यह ब्राह्मण बड़े ध्यान से उसको देखता पर बालक इतना व्यस्त था और अपने कार्य में कुछ ऐसा तल्लीन था कि इस बात पर उसका ध्यान ही नहीं गया—कि कोई आगन्तुक यहाँ बैठा है। ब्राह्मण ने भी उसे टोका नहीं। पर वह बड़े ध्यान से उस बालक को देख रहा था।

दोपहर ढल गयी और अतिथियों की भीड़ भाड़ छँट गई। बालक की व्यस्तता कुछ कम हुई तो कुटी की ओर आते हुए उसका ध्यान इस ब्राह्मण पर गया। बालक ने ब्राह्मण के पास आकर कहा—

"आप कौन हैं ?"

"एक अभ्यागत अतिथि ?'

'क्या आप ब्राह्मण हैं ?"

'जन्म तो ब्राह्मण के घर हो हुआ था, पर उसका मुझे अभिमान नहीं है।"

"भोजन हुआ ?"

'न"।

'क्यों ? सब ब्राह्मण तो भोजन कर गए।

'तो इससे मुझे क्या ?

आप भी भोजन कीजिए, दक्षिणा लोजिए, रानी मोहर दक्षिणा दे रही हैं।'

'मैं भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हूँ। भोजन और दक्षिणा के लिए यहाँ नहीं आया।'

'तो किसलिए आए हैं ?"

'दर्शन करने के लिए ।"

'तो चलिए, देवदर्शन कीजिए ।

'मैं देवीदर्शन करने आया हूँ ।

'उधर कालीमाई का दर्शन है । चल कर उन्हीं का दर्शन कीजिए ।

काली माँ क दर्शन की मुझ उत्सुकता नहीं है । म बड़ी माँ के दर्शन करना चाहता हूँ ।

'बड़ी माँ कौन ?

जिनके पुण्य प्रताप का यह मुफ्त भोज रहा है । जिनक हृदय की उदारता पवित्रता सौजन्य तथा साधुता का सौरभ इस भूमि में व्याप्त हो रहा है । मैं उन्हीं धर्मात्मा रानी माता के दर्शन करना चाहता हूँ ।

रानी माँ पूजा में हैं । तीन दिन से वे निराहार हैं । जब तक सब ब्राह्मण भोजन नहीं कर लेंगे वे जल भी ग्रहण नहीं करेंगी । अत अभी उनका दर्शन नहीं हो सकता ।

'तो जब हो सकता है तभी सही ।'

'क्या आप उनसे कुछ माँगना चाहते हैं ?'

'मैं उन्हें कुछ भेंट अर्पण किया चाहता हूँ ।

'कैसी भेंट ?

'यह उन्हीं को बताई जा सकती है ।

अच्छी बात है म अवसर पाते ही उनस कहूँगा । किन्तु आप भोजन तो कीजिए ।

"उनके दर्शन करने क बाद भोजन भी हो जायगा ।'

बालक जाने लगा तो ब्राह्मण ने पूछा— 'तुम्हारा नाम क्या है भैया ?"

"मैं रामकृष्ण हूँ। और यहाँ दक्षिणेश्वर में राधामाधव के शृंगार करने के काम पर नियुक्त हूँ।

तुम्हारे भीतर तो भैया कोई महान् आत्मा वास कर रही है। क्या तुमने भोजन किया ?

नहीं ' कह कर बालक तभी से भाग गया।

— ० —

३५

सूर्यास्त से कुछ पहले ही वह बालक रानी रासमणि को ले कर ब्राह्मण के पास आया। रानी ने दोनों हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को प्रणाम किया। पर इससे प्रथम ही ब्राह्मण ने धरती में लोट कर रानी को साष्टांग प्रणाम किया।

रानी ने कानों कानों पर हाथ धर कर कहा—

"यह आपने क्या किया ब्राह्मण देवता ? मैं शूद्रा हूँ अस्पृश्या हूँ। आपने मुझे प्रणाम किया मुझ पर पातक चढ़ाया।

आप दिव्यरूपा हैं सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और पूज्या हैं। आपके दर्शन से मनुष्य की मुक्ति हो सकती है। मैं प्रातःकाल ही से आपके दर्शन करने की अभिलाषा से यहाँ बैठा हूँ।

आपने भोजन नहीं किया ?

"नहीं।

'तो भोजन कीजिए।

आप अपने हाथ से रांध कर भात दें, तो भोजन कर सकता हूं।"

'किन्तु यह कैसे हो सकता है, मैं जाति की केवट हूं।

'तो इससे क्या? मैं ब्राह्मण हूं। परन्तु जो आत्मा मेरे अन्तर में वास करता है वही आपके अन्तर में भी है। अन्तर इतना ही है कि आप धर्मात्मा और पवित्र हैं और मैं अधम हूं।

'शिव शिव यह आप कैसी बात कहते हैं आप ब्राह्मण हैं।'

'ब्राह्मण तो सदा सत्य बोलता है। मैंने भी सत्य कहा है। मैंने आपके सम्बन्ध में सब बातें सुनीं। ब्राह्मणों ने आपका कितना तिरस्कार किया यह भी सुना। जाति-अभिमान में ये मूढ़ अन्ध-धुरे और धर्माधर्म का विचार भी खो बैठे हैं। फिरंगी लोग इनके सिर पर पैर रख कर जो शासन चला रहे हैं वहां इन ब्राह्मणों की चाल नहीं चलती। उन्हें माई-बाप बनाते इनको लज्जा नहीं आती। जिस दिन नैष्ठिक ब्राह्मण नन्दकुमार को कलकत्ता में फांसी दी गई तब ये ब्राह्मण और इनके शास्त्र कहां चले गए थे। इन्होंने शाप देकर अंग्रेजों को क्यों नहीं भस्म कर दिया। ये ढोंगी पाखण्डी, मूर्ख, घमण्डी ब्राह्मण एक धर्मात्मा रानी का ही नहीं देवता का भी तिरस्कार करने में नहीं शर्माए। आप जाति से शूद्र हैं इसलिए आप द्वारा प्रतिष्ठित देवता का पूजन-नमन भी ये नहीं करेंगे? मैं चाहता हूं कि मैं इन सब ब्राह्मणों को गोली से उड़ा दूं और हिन्दू धर्म को इनकी दासता से मुक्त कर दूं।

रानी ने हाथ जोड़ कर कहा—"आप तेजस्वी ब्राह्मण हैं। जो चाहें कहें पर मैं स्त्री हूं शूद्र हूं असहाय हूं मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं तो यही समझती हूं कि मेरा पुण्य-पाप हो गया, देवता की प्रतिष्ठा हो गई और मेरा धन सत्कर्म में लग गया। अब मैं प्रसन्न हूं।

"आप केवल शरीर से ही शूद्र नहीं हैं आपका मन भी इन ब्राह्मणों की दासता में फँसा है। आप आत्म-सम्मान खो चुकी हैं। नहीं तो इतना अपमान करने वाले इन ब्राह्मणों का तो आप को मुँह भी न देखना चाहिए था।"

"ऐसा मत कहिए। ब्राह्मण पृथ्वी के स्वामी हैं। वह भूसुर हैं।

"पर वह ब्राह्मण हो भी तो। जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में करके वासना से मुक्ति पा ली हो और जो सब बन्धनों से मुक्त वीतराग शान्त महात्मा हो वही तो ब्राह्मण है। ये दक्षिणा के लोभ में निमन्त्रण खाने वाले पेटू ब्राह्मण थोड़े ही हैं। ब्राह्मण के रूप में बैल हैं।"

"आप समर्थ हैं जो चाहे कहिए। परन्तु कृपा कर भोजन कर लीजिए। आप भोजन कर लें तो मैं भी ठाकुर का चरणामृत लूँ।

कह तो चुका—अपने हाथों से भात राँध कर देंगी तो ही भोजन करूँगा नहीं तो नहीं।

'मैं ब्राह्मण को अपने हाथ का भात कैसे खिला सकती हूँ ?

"विश्वास रखिए महारानी आपका भात खाकर भी मैं ऐसा ही ब्राह्मण रहूँगा। मैं कच्चा ब्राह्मण नहीं हूँ। मेरा ब्राह्मणत्व खूब पक्का है।।

"परन्तु ब्राह्मण सुनेंगे तो आपको जातिच्युत कर देंगे ?

मैं तो प्रथम ही इन सब भोजन भट्टों को जातिच्युत कर चुका हूँ। ये अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

मैं ब्राह्मण के हाथ से पृथक भोजन आपके लिए बनवाए देती हूँ।"

'ब्राह्मण के हाथ का मैं खाऊँगा नहीं। आप ही के हाथ का भात खाऊँगा। आप मातृरूपा हैं। जगद्धात्री का स्वरूप हैं।

गए। मैं बड़ी देर तक गर्जन-तर्जन करते रहे और फिर चले गए।

ब्राह्मण ने भोजन करके कहा— बस माँ अब मैं जाऊँगा। आपसे एक अनुरोध करता हूँ, आप मानेंगी ?

आप जो कहेंगे वही मैं करूँगी।'

'तो सुनिए। बैरकपुर की छावनी में जो बड़े साहब हैं कमांडिंग जनरल उनकी स्त्री का नाम सुभद्रा देवी है। वह ब्राह्मण कन्या है। वह आप ही की भाँति निष्ठावाली स्त्री है। भारत में शीघ्र ही एक महा उत्पात उठेगा। एक ज्वालामुखी का विस्फोट होगा। जिसमें सब अंग्रेज फिरंगी भस्म हो जाएँगे। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप उनसे जाकर मिलें। उन्हें अपनी सखी और मित्र बनाएँ, और विपत्ति के समय उन्हें अपने यहाँ रक्षण दें। मैंने उन्हें सौभाग्य वती रहने का आशीर्वाद दिया है। मेरे इस आशीर्वाद को आप सफल कीजिए। संभव है मैं समय पर उन तक न पहुँच सकूँ। इसी से यह भार आपको सौंपता हूँ।'

इतना कह कर वह ब्राह्मण तभी से वहाँ से चल दिया। उसने मुँह फेर कर भी नहीं देखा। रानी एक मुहूर्त भर उसी ओर देखती रहीं जिस ओर वह अद्भुत ब्राह्मण गया था।



१७

जान बाजार की रानी रासमणि मुलाकात के लिए आई हैं यह सूचना पाते ही सुभद्रा एकबारगी ही व्यस्त हो उठी। और वह बँगले के बाहर भागी आई। बाहर आ कर देखा—बहुमूल्य

किमख्वाब से ढकी एक पालकी सेहन में लगी थी और लकदक सुनहरी पोशाक पहने आठ कहार उसकी बगल में खड़े थे। उनके पीछे पन्द्रह-बीस सवार बन्दूकें लिए लाल और हरी बनात के अंगे पहने साफा बाँध कर खड़े थे। सेहन से बाहर मैदान में एक हाथी सुनहरी झोल से सुसज्जित सूँड़ हिला रहा था। फाटक से हट कर रानी के दीवान महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय मूल्यवान रेशमी चादर कन्धे पर डाल चुपचाप खड़े थे। उनके पीछे आठ-दस बहँगी रखीं थीं। उन पर बहुत से थाल झावे और सन्दूक थे। थालों और झावों में मिठाइयाँ, पकवान्न और बक्सों में कीमती वस्त्र भरे थे।

शुभदा देवी को देखते ही रानी रासमणि पालकी से निकल आई, उन्होंने शुभदा की चरण रज ली। शुभदा देवी ने उन्हें रोक कर कहा—"हैं-हैं यह आप क्या कर रही हैं ?

"रानी ने हँसते हुए कहा— आप उम्र में मेरी बेटी के बराबर हैं, पर आप ब्राह्मण की बेटी हैं मैं शूद्र हूँ। आपकी चरण रज लेना मेरा धर्म है। मैं जान बाजार की रानी रासमणि हूँ। आपके पिता का गाँव मेरी ही जमींदारी में है। आपके पिता मेरे पति के विद्या-गुरु थे। आपके सम्बन्ध में बहुत दिन हुए मैंने सुना था। पर आप यहीं हैं यह नहीं जानती थी। अब जाना तो दर्शन करने चली आई।'

'मेरा बड़ा भाग्य जो आपने दर्शन दिए। बड़ी कृपा की आपने। आपका शुभ नाम और धवल यश मैं सुन चुकी हूँ—आप तो पुण्य-दर्शना हैं। दक्षिणेश्वर भी मैं देख आई हूँ—बड़ा सुन्दर देव धाम बनाया है आप ने। किन्तु आप मुझे बेटी कहती हैं—फिर भी 'आप' कह कर क्यों बोलती हैं? तथा स्नान करने आई हैं दर्शन देने आई हैं यह क्यों नहीं कहती।

तुम्हारे पति से यह अनुरोध करने आई हूँ कि भगवान् न करे यदि कभी ऐसा दुर्दिन आए, तो तुम आनबाजार के महल को अपना ही समझना। मेरे महल में दो सौ सिपाही हैं। और भी आदमी हैं। वहाँ कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। तुम अपने पति और इष्ट मित्रों सहित वहीं आ जाना।'

आपका आश्वासन और कृपा असाधारण है। मैं अपनी ओर से तथा अपने पति की ओर से आप को धन्यवाद देती हूँ।

'बेटी हो कर माँ को धन्यवाद देती हो? कलियुगी बेटी हो तुम बिटिया।' यह कह कर रानी हँस दी। फिर कहा— 'इस समय तुम्हारे पति से भेंट न हो सकी। पर मेरा संदेश तुम उनसे कह देना। अथवा यह अधिक अच्छा होगा—कि एक बार तुम उन्हें ले कर आन बाजार आ ही जाओ तो आवश्यकता होने पर क्या-क्या प्रबन्ध व्यवस्था करनी होगी, इसका ठीक ठिकाना कर लिया जाय।

मैं जरूर उनसे कहूँगी।"

'मुझे पत्र लिखोगी या मैं चट्टोपाध्याय महाशय को तुम्हारे पास भेजूँ?"

"मैं ही आदमी भेजूँगी।

"तो बेटी, भूल न करना। कहीं ऐसा न हो—ब्राह्मण की आज्ञा-पालन में मुझसे चूक हो जाय—और मेरा धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाय।"

'नहीं महारानी ऐसा नहीं होगा। किन्तु आप क्या इस भ्रष्टा ब्राह्मणी के यहाँ कुछ भी खाएँ-पिएँगी नहीं?

'नहीं बेटी। नाराज मत होना। मैं तीसरे पहर गंगाजल से स्नान करके केवल एक जून हविष्यान्न भोजन करती हूँ। तथा केवल गंगाजल का छोड़ और कुछ ग्रहण नहीं करती। शूद्र हूँ बेटी गंग

ग्यारह बरस से मेरा यही नियम चल रहा है। स्वार्थवश ही यह कर रही हूँ—इससे कदाचित् मेरा शूद्र जाति से उद्धार हो जाय।" यह कह कर रानी आसन छोड़ उठ खड़ी हुई।

सुखदा ने कहा—'माँ, आप दिव्यरूपिणी हैं। कौन आपको शूद्र कहता है। जहाँ आप जैसी साध्वी की चरण रज पड़ेगी—वह भूमि तो एक योजन तक पवित्र हो जायगी। इतना कह कर हठात् सुखदा देवी ने गले में आँचल डाल कर भू-पतित हो रानी के चरणों में मस्तक टेक दिया।

'यह क्या किया यह क्या किया बेटी—गोविन्द गोविन्द, तुम ने तो मुझे पातकी बना दिया। ब्राह्मण की कन्या हो कर मेरे पैरों में सिर दे दिया। छी, छी।"

'माँ अपने सारे जीवन में आज मुझ से एक पुण्य-कार्य हुआ। मेरा जीवन धन्य हुआ।"

सुखदा की आँखों से आँसू बह चले। रानी ने फिर उसकी ठोड़ी छू कर अपनी उँगलियाँ चूमीं। और आकर पालकी में बैठ गई।

— ० —

३८

मेजर बनरस व्यस्त भाव से बंगले में आए। उनके चहरे पर स्पष्ट ही परेशानी की रेखाएँ दिख रही थीं। सुखदा ने शंकित चित्त से उनकी ओर देख कर कहा—'क्या कोई और दुर्घटना हो गई है?'

'मंगल पाण्डे का कोर्ट मार्शल हो गया। उसे फाँसी का हुक्म हुआ है।'

'क्या उसे बचा नहीं सके ?'

'मेरी तो सभी कोशिशें बेकार गईं ।"

'बड़ी खराब बात है । ब्राह्मण को फाँसी होगी । बंगाल की भूमि को अंग्रेज ब्राह्मण ही के रक्त से क्यों सींच रहे हैं ! महाराज नन्दकुमार के बाद अब मंगल पाण्डे !

"इस तरह नामों की सूची एकत्र करने से क्या लाभ है सुमदा भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न कारण परिस्थिति वश उत्पन्न हो जाते हैं ।

'तो क्या तुम भी पाण्डे को फाँसी देने के पक्ष में थे ?'

'मैं तो कमीशन का सदस्य नहीं था । फिर मैं तो तुम्हारे अनुरोध की रक्षा कर रहा था । पाण्डे के दोष पर मेरी नजर नहीं थी ।"

'तो पाण्डे को अब फाँसी ही होगी ?"

एक मुश्किल आ पड़ी है सुमदा बैरक का कोई जल्लाद पाण्डे को फाँसी पर चढ़ाने को राजी नहीं होता ।'

क्या ही अच्छा हो कि कमीशन के सदस्यों की भी यही राय हो जाय ।

यह संभव नहीं है परन्तु कलकत्ते से जल्लाद बुलाए गए हैं ।'

'लेकिन वह तो अभी घायल है । घायल आदमी को फाँसी दी जायगी ? यह तो अमानुषिकता की हद है ।"

कभी-कभी अमानुषी काम भी करने पड़ते हैं सुमदा । सैनिक अनुशासन बड़ा कठोर है ।

'इसका परिणाम क्या होगा । क्या यह कोई नहीं सोचता ?

विचारक को अपनी सीमा से बाहर सोचने का अधिकार नहीं है ।"

"तो आप क्या समझते हैं कि कलकत्ते से जल्लाद आ जायगा ?"

"मैं समझता हूँ आ जायगा ।

"कब तक ?

"परसों तक ।

"तो उसे हम कहीं भगा या छिपा नहीं सकते ?"

'इससे क्या होगा ? पाण्डे का प्राण तो बचेगा नहीं उसे ढूँढ निकाला जायगा ।"

"तब तक न जाने क्या हो जाय । क्या उसे भगा देने की अनुमति देते हो ?

'इससे प्रथम मुझे नौकरी से इस्तीफा देना होगा ।"

"क्यों ?"

"मैं अपने दायित्व को कैसे भूला सकता हूँ । सुखदा तुम्हीं कैसे इसे बर्दाश्त कर सकोगी ।

'उससे तो गोली मार लो थी । अच्छा होता, उसी से यह अभागा ब्राह्मण मर जाता चाण्डाल का स्पर्श तो उसे न करना होता ।

सुखदा देवी का मुँह बादलों से भरे आकाश के समान गम्भीर हो गया । फिर उन्होंने कहा— 'क्या आपने यह भी सोचा है कि उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी ?"

'तुम्हारा अभिप्राय मैं समझता हूँ परन्तु यह अब मेरे ही करने की बात नहीं है । इसका सम्बन्ध ब्रिटिश राजनीति से है ।

लेकिन तुम तो स्वयं अंग्रेज हो और साथ ही विचारशील बड़े अफसर हो । क्यों नहीं तुम सरकार से कहते ?

"मैं सिपाही हूँ । सरकार को सलाह देना मेरा काम नहीं है । सरकार की आज्ञा-पालन करना मेरा काम है ।

'भले ही वह आज्ञा अनुचित हो ?'

"आज्ञा के औचित्य पर भी विचार करने का मुझे अधिकार नहीं है। हाँ मैं नौकरी छोड़ सकता हूँ।

"इसका मतलब यह—कि बिना आत्मघात किए हम सीधी राह नहीं चल सकते।'

"तुमने संसार की राजनीति की सबसे सुन्दर व्याख्या कर दी सुभद्रा।

क्या मैं उस ब्राह्मण से मिल सकती हूँ ?

नहीं।

'क्या उसे कुछ सहायता पहुँचा सकती हूँ ?

नहीं।

सुभद्रा बड़ी देर तक गुमसुम चुप बैठी रही। फिर उसने कहा—"भीतर आओ।'

मेकडानल्ड ने भीतर जा कर देखा—थालों में बहुत-सी मिठाइयाँ कीमती साड़ियाँ और वस्त्र हैं।

'कहाँ से आए ये सब ?'

'दहेज आया है।"

'दहेज ?

'मैं तो यही कहना चाहती हूँ।" उसने रानी रासमणि का आना उनकी स्नेहनिष्ठा और सदेश सभी कुछ पति को बता दिया।

सुन कर मेकडानल्ड ने कहा— 'तुमने उन्हें रोका नहीं।'

'बहुत कहा। अब उचित है कि एक बार उनके यहाँ चलो।"

'यही मुनासिब है। तो चर चलो अब खाना खा लें। मुझे अभी आफिस जाना है। कुछ अत्यन्त आवश्यक हुक्म आए हैं। उनकी तामील करनी है।

दोनों पति-पत्नी भोजन करने बैठे।

३४वीं रजीमण्ट जिसमें मगल पाण्डे सिपाही था अपन उत्तम आचरण के लिए प्रामाणिक थी। अपने कमाण्डर ह्वीलर के आधीन इस रजीमण्ट ने उत्तम शिक्षा पाई थी। तथा इसके सूबदार ने द्वितीय ग्रेनेडियर क दो सैनिकों को जो राजद्रोह क लिए तकसान आए थ सजा दिलाई थी। जाँच-अधिकारियों क समक्ष भी यह प्रमाणित नहीं हुआ कि बरहमपुर क उपद्रवों के साथ उनका कोई सम्बन्ध है। यह एक आकस्मिक घटना ही थी कि इस रेजीमण्ट के वहाँ पहुँचते ही मंगल पाण्ड न यह उत्तेजनापूर्ण काम किया। परन्तु मंगल पाण्डे के उपद्रव करन पर ईश्वरी पाण्ड तथा उसक साथियों की उदासीनता से रेजीमण्ट पर सदेह हो गया। इसमें संदेह नहीं कि सिपाही अपने अंग्रेज अफसरों स घृणा करत थ। यही कारण था कि जब मगल पाण्डे ने लेफ्टीनेण्ट बफ पर प्राणघातक आक्रमण किया तो अन्य सिपाही उदासीनता स चुपचाप देखते रहे। क्या उसको सैनिक अनुशासन की याद दिला कर नहीं रोका जा सकता था?

मजर क सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए और मंगल पाण्ड के गले में फाँसी का फन्दा डालन का समय आ पहुँचा। खुले मैदान में बहुत-से आदमी जमा थे। मजिस्ट्रेट, जमर और जेल का डाक्टर पत्थर की मूर्ति बन पास ही खड़े थे। अपने वध-स्थल पर मंगल पाण्डे अविचल भाव से शान्त मुद्रा में खड़ा हुआ था।

मजिस्ट्रेट ने प्रश्न किया— "घर सदश भजना चाहते हो?" मगल की आँखें लाल हो गईं। उसने एक बार घूर कर अंग्रेज मजिस्ट्रेट की ओर देखा और कहा—

'घर को नहीं देश-भाइयों को। देश भाइयों को मेरा खून देना और कहना—जब तक बदला न लें चुप न बैठें। मरना है, तो कुत्तों की मौत नहीं इंसान की मौत मरना चाहिए।

जल्लाद काली टोपी ले कर आगे बढ़ा तब उसने हाथ बढ़ा कर जल्लाद से टोपी ले ली और स्वयं पहन कर गले तक मुख को ढक लिया। उसका दूसरा संकेत पाकर जल्लाद ने फाँसी का फंदा उसके हाथ में दे दिया और मंगल ने उसे अपने गले में डाल लिया।

क्लास हिला और तख्ता टूटा। वीर पुरुष का शरीर रस्सी पर झूल गया। न जाने मानव-जीवन में कब से यह बर्बरता समाई बैठी है कि जीवित आदमी को मार डालना न्याय का एक अंग माना गया है।

— ० —

४०

मेजर उदास मन अपने घर के आँगन में शुभदा के सम्मुख आ खड़े हुए। शुभदा की आँखों में आँसू थे और वह एक शब्द भी बोल नहीं पा रही थी।

मेजर अपनी पत्नी का यह दुःख नहीं देख सके। यद्यपि वे अंग्रेज थे और अंग्रेज सेना में एक बहुत बड़े आफीसर, परन्तु शुभदा के सान्निध्य में उन्होंने अपने हृदय में इस महान् मंत्र को स्वीकार कर लिया था कि सबसे पवित्र तीर्थ मानव-हृदय है।

बहुत देर तक वे अपनी पत्नी और अपने घर को ताकते रहे। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था—मानो वे अपने अति प्रिय सम्बन्धी का मृत्यु-संस्कार करके लौटे हैं। धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उन्होंने अपनी पत्नी का हाथ पकड़ लिया और कहा—

"शुभदा, मैं अपने सैनिक पद से इस्तीफा दे आया हूँ और उस भार से मुक्त हूँ। आओ अब चलें।"

"रानी रासमणि के घर ?"

"नहीं।"

"इंग्लैंड—अपने घर ?"

"नहीं।"

"तब कहाँ ?"

"नैनीताल में, सन्त पाल के चर्च में।"

"वहाँ क्यों ?"

'वहाँ मेरे अंकल रहते हैं। उन्होंने अपना अंग्रेजी नाम त्याग कर भारतीय नाम मोरा सन्त रखा है। मेरी ही भाँति, एक त्यक्त और पीड़ित भारतीय नारी से विवाह किया है और अब दोनों व्यक्ति दीन-दुखियों की सेवा में लगे हुए हैं। वहाँ एक अस्पताल, एक प्रसूति-गृह और एक स्कूल उन्होंने भारतीयों के लिए खोल दिया है। तुमने जो मुझे यह गुरु-मन्त्र दिया है, कि सबसे पवित्र तीर्थ मानव-हृदय है, उसका पालन न तो मैं रानी रासमणि के राजमहल में कर सकूँगा, न अपने देश इंग्लैंड में जाकर। मैं भारतीय भूमि में अपने प्राणों का विसर्जन किया चाहता हूँ। यदि मैं कभी इससे विचलित भी होऊँ, तो प्रिये शुभदा, तुम मुझे उससे बचाना।"

—०—